वर्ष : १३
अंक : १२४
अप्रैल २००३
चैत्र-वैशाख
वि. सं. २०५९-२०६०

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

संत अवतरण : २२ अप्रैल पर विशेष
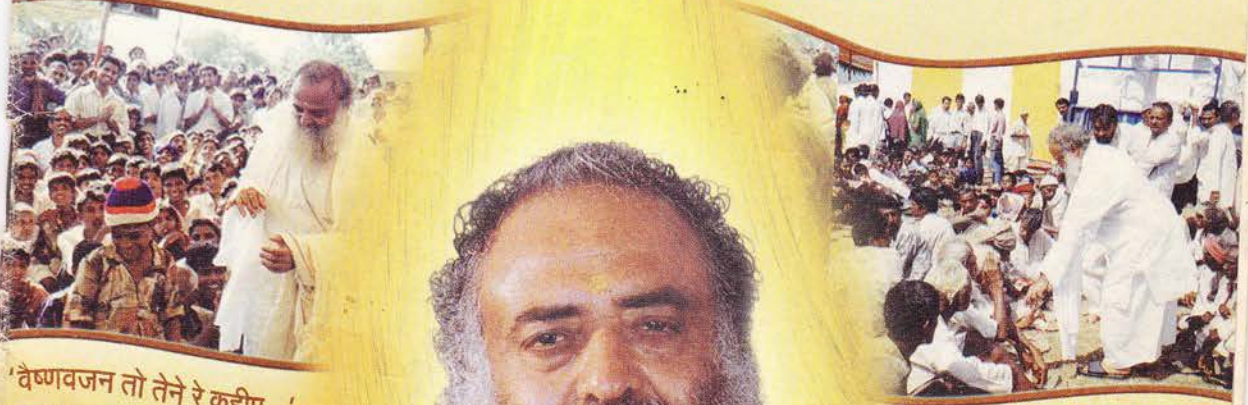
'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए...'

संत हृदय सर्व हितकारी...

संत हृदय नवनीत समाना...

आत्मवत् पश्येत् सर्व भूतेषु

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

संत वेश में आये भगवन्, सबकी पीड़ा हरने। मानव को महेश बनाकर, धर्म-स्थापना करने ॥
जो हैं गरीब और पीड़ित, उनको धीरज बँधाते। जिनका कोई नहीं जहाँ में, उनको हैं अपनाते ॥

हे गुरुवर बापूजी ! हमको दो ऐसा वरदान । ज्ञान हमें मिले ऐसा, जिससे हो जीवन-उत्थान ॥
विद्यानगर (आणंद, गुज.) में, बापूजी ने बहायी ज्ञान की सरिता । सभी विद्यार्थी तृप्त हुए, रहा न कोई रीता ॥

शिवरात्रि की अमृतवेला पर महाकाल की महानगरी उज्जैन में आत्मशिव में प्रतिष्ठित पूज्य बापूजी के देव-दुर्लभ सान्निध्य का लाभ लेकर ध्यान की गहराइयों में गोते लगाते उज्जैनवासी (म.प्र.).

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२४
९ अप्रैल २००३
चैत्र-वैशाख, विक्रम संवत् २०५९-२०६०
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा (गांधीनगर), साबरमती, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसाराम वाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

परम पुरुष जगदीश ईश ने...

परम पुरुष जगदीश ईश ने, भक्त हित अवतार लिया।
रहे कृपा गुरुदेव की हम पर, गुरुवर ने भवपार किया ॥
मन मंदिर मेरा घर तेरा, गुरुदेव इसमें निवास करें।
पुकार रहा मैं बालक हूँ, बालक पर नाथ कृपा करें ॥
जब आँख खुले दर्शन तेरा, सपने भी तुम्हारे आते हैं।
यह जीवन धन्य पावन हुआ, हम गुरुकृपा अब पाते हैं ॥
गुणातीत की मस्ती में, जब आप सत्संग सुनाते हैं।
रूपातीत प्रभु अलख निरंजन, शिवस्वरूप हो जाते हैं ॥
देवों के देव हो हे गुरुवर ! जब दर्शन आपका पाते हैं।
वंदन करते गुरुचरणों में, भावों के मोती बह जाते हैं ॥
आराम मिले निज आत्मा में, गुरु ब्रह्मज्ञान बतलाते हैं।
साकार रूप लेकर श्रीकृष्ण, गीता उपदेश सुनाते हैं ॥
राग-द्वेष नहीं है दिल में, मेरे गुरुवर ब्रह्म अवतार हैं।
मन मेरा गुरुचरणों में लगा, अब भव से बेड़ा पार है ॥
जीवन हमारा धन्य हुआ, धन्य ये भारत माता है।
बालक तुम्हारा हूँ गुरुवर ! यह जन्म-जन्म का नाता है ॥
पूजूँ मैं सदा गुरुचरणों को, मैं प्यार प्रभु का पाता हूँ।
साधक पर गुरुवर कृपा करो, मैं श्रद्धा-सुमन चढ़ाता हूँ ॥

- जी. एस. पुरोहित (पत्रकार), जैतपुर, जिला - पाली (राज.).

*

पूज्य बापू का अवतरण दिन

वो दिन आ गया है आज, जिसका किया था इंतजार।
पूज्यश्री के चरणों में, हम सबका प्रणाम है बारंबार ॥
खुशियों में झूम-झूमकर, देवगण फूल बरसायेंगे।
आनंदित हुए सभी भक्तजन, हर्षविभोर हो जायेंगे ॥
जन्मदिन के सुअवसर पर, देते भक्तगण बधाई हैं।
कभी ना बिछड़े इनसे हम, प्रार्थना यही हमारी है ॥
कई जन्मों के पुण्यों से, बापू को हमने पाया है।
श्रीचरणों में ही हमने, अपना शीश नवाया है ॥

- मिताली पोरवाल, कक्षा - १२वीं, भोपाल (म.प्र.).

*

सद्गुरु

साथी सगे सब स्वार्थ के हैं, स्वार्थ का संसार है।
निःस्वार्थ सद्गुरु देव हैं, सच्चा वही हितकार है ॥
ईश्वर कृपा होवे तभी , सद्गुरु कृपा जब होय है।
सद्गुरु कृपा बिनु ईश भी, नहीं मैल मन का धोय है ॥
निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा, मार्ग ही दिखलाय हैं।
दृढ़ ग्रंथि चिज्जड़ खोलने की, युक्ति नहीं बतलाय हैं ॥
निःसंग होने के सबब से, ईश भी रुक जाय है।
गुरु गाँठ खोलन रीति तो, गुरुदेव ही बतलाय हैं ॥
गुरुदेव अद्भुत रूप, हैं परधाम माहिं विराजते।
उपदेश देने सत्य का, इस लोक में आजावते ॥
दुर्गम्य का अनुभव करा, भय से परे लेजावते।
पर धाम में पहुँचाय कर, स्वराज्य पद दिलवावते ॥
छुड़वाय कर सब कामना, कर देय हैं निष्कामना।
सब कामनाओं का बता घर, पूर्ण करते कामना ॥
मिथ्या विषय सुख से हटा, सुख सिन्धु देते हैं बता।
सुख सिन्धु जल से पूर्ण, अपना आप देते हैं जता ॥
तनु, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब, सम्बन्ध छुड़वा देय हैं।
अणु को बृहत् करि सूर्य ज्यों, जग माहिं चमका देय हैं ॥
आधार सारे विश्व का, सबका हि जो अध्यक्ष है।
सो ही बनाते जीव को, ब्रह्माण्ड जिसका साक्ष्य है ॥
इक तुच्छ वस्तु छीनकर, आपत्तियाँ सब मेटकर।
प्याला पिलाकर अमृत का, मर को बनाते हैं अमर ॥
सब भाँति से कृत कृत्य कर, परतंत्र को निज तंत्र कर।
अधिपति रहित देते बना, भय से छुटा करते निडर ॥

- श्री भोले बाबाजी

गुरुकृपा तो हमेशा होती है। तुम ऐसी कल्पना करते हो कि वह एक ऐसी चीज है जो कहीं दूर, ऊँचे आसमान में है और वह उतरेगी। सचमुच वह तुम्हारे हृदय में है। जिस क्षण तुम मन को उसके अधिष्ठान में विलीन कर देते हो, उसी क्षण तुम्हारे भीतर से गुरुकृपा का फव्वारा छूटता है। – श्री रमण महर्षि

अध्यास क्या है ?

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

सभी मनुष्य 'सत्' ता, चेतनता और आनंद चाहते हैं । 'मैं सदा बना रहूँ अथवा मेरा सिद्धांत सदा चलता रहे...' यह 'सत्'ता की माँग है । 'मैं यह जान लूँ... वह जान लूँ...' यह चेतनता है और 'मैं सदा सुख पाऊँ...' यह आनंद है । जो सच्चिदानंद परमात्मा का स्वभाव है, वही मनुष्य की माँग है ।

जब तक उसे निरावरण सत्-चित्-आनंद का प्रसाद नहीं मिलता, तब तक बेचारा अध्यास में यात्रा करता रहता है । 'मैं मोहन हूँ' - यह देह का अध्यास हुआ, 'मैं ब्राह्मण हूँ' - यह जाति का अध्यास हुआ, 'मैं धनवान हूँ' - यह धन का अध्यास हुआ, 'मैं बुद्धिमान हूँ' - यह बुद्धि का अध्यास हुआ... ऐसे कई तरह के अध्यास होते हैं ।

देह भी तीन प्रकार की है : स्थूल, सूक्ष्म और कारण । देह, जाति आदि का अध्यास स्थूल देह का अध्यास है, पापात्मा-पुण्यात्मा आदि का अध्यास सूक्ष्म देह का अध्यास है और समाधि-विक्षेप आदि का अध्यास कारण शरीर का अध्यास है ।

आपके मन के अनुसार जगत अध्यस्त है । जगत के सुख-दुःख भी अध्यस्त हैं । ऐसे ही पुण्यात्मापना और पापीपना, सुखीपना और दुःखीपना - ये भी अध्यस्त हैं । लेकिन जिसके आधार से मन अध्यास बनाता है उसको यदि आप जान लें तो अध्यास गलित हो जाय । इस अध्यास को अगर आप समझ जायें, इसके साक्षी हो जायें तो बहुत सारी परिच्छिन्नताएँ, मान्यताएँ, कल्पनाएँ पंख लगाकर उड़ जाती हैं ।

हम दुःख के साथ एकाकार हो जाते हैं इसीलिए दुःखी हो जाते हैं । दुःख का अध्यास किये बिना हम दुःख में फँस नहीं सकते और सुख का अध्यास किये बिना सुख में फँस नहीं सकते । अपने साक्षी स्वभाव की स्मृति से इन अध्यासों का प्रभाव क्षीण होने लगता है और हम सच्चे सुख में, सच्चिदानंद की यात्रा में प्रवेश पा लेते हैं ।

देहाध्यास नहीं मिटा तो मान-अपमान का प्रभाव नहीं मिटेगा । सुख-दुःख का भोक्तापन नहीं मिटेगा । सुख-दुःख का भोक्तापन नहीं मिटा तो समझो, अभी यात्रा पूरी नहीं हुई ।

शरीर कितना भी स्वस्थ हो जाय लेकिन इसका अध्यास नहीं छूटा तो बीमारी और मृत्यु का भय बना रहेगा । ऐसा कोई धनवान नहीं जिसे धन न छोड़ना पड़े । ऐसा कोई शरीरवाला नहीं जिसे शरीर न छोड़ना पड़े । किंतु छूटनेवाली चीजों में सत्बुद्धि करते हैं और अछूट परमात्मा का ज्ञान नहीं है इसीलिए सारे लोग दुःखी और परेशान हैं ।

अध्यास आदमी को सहज नहीं रखता वरन् कपटी, बेईमान और अहंकारी बना देता है । आपके घर कोई मेहमान आया हो और वह भी उसी धर्म-पंथ का हो जिस पंथ के आप हैं तो आपकी पूजा-अर्चना लंबी हो जायेगी । यदि वह किसी अन्य पंथ का हो तो पूजा-अर्चना छोटी हो जायेगी ।

लेकिन जो अध्यास की पोल को जान लेता है, वह सहज रहेगा । उसको मेहमान का भय नहीं रहेगा और मेहमान भी उसके घर से खुश होकर जायेंगे । जो सहज में जीता है उससे सब लोग खुश रहते हैं । जो अध्यास में जीता है, वह बनावटी जीवन जीता है ।

बालक प्यारा क्यों लगता है ? क्योंकि उसे अध्यास नहीं है, उसकी अध्यास-वृत्ति सुषुप्त है और ब्रह्मज्ञानी क्यों प्यारे लगते हैं ? क्योंकि उनकी अध्यास-वृत्ति व्यतीत हो गयी है । बच्चा साँप के निकट चला जायेगा और कभी हाथ से पकड़ भी लेगा । उसको डर नहीं लगेगा क्योंकि उसका अध्यास अविकसित है और ब्रह्मज्ञानी महापुरुष भी साँप के निकट चले जायेंगे, मौज आ जाय तो हाथ भी घुमा देंगे क्योंकि उनका देहाध्यास बाधित हो गया है ।

एक महात्मा अपने भक्तों के पास बैठे थे ।

तभी उनके पास एक सिंह आया। उसे देखकर भक्त डर गये। महात्मा ने सिंह से कहा : 'वनकेसरी! तू बीच में खड़ा है। जा, अपने रास्ते चला जा। ये सब डर रहे हैं।'

किंतु सिंह न गया। महात्मा ने पूछा : 'तू क्यों नहीं जा रहा है ?'

सिंह ने अपना पंजा ऊपर उठाकर दिखाया। महात्मा ने देखा कि पंजे में काँटा चुभा हुआ है। महात्मा ने काँटा निकाला और कहा : 'अब जाओ, हमारे भक्त तुमसे डरते हैं।'

सिंह चला गया। महात्मा को देहाध्यास नहीं था, आत्मभाव था तो सिंह उनका क्या बिगाड़ सकता था ?

'मेरा नाम हो...' - ऐसा देहाध्यास के कारण ही होता है। राग, द्वेष, भय, शोक, चिन्ता आदि सब देहाध्यास के कारण ही होते हैं। वास्तव में आप मर सकें ऐसी चीज नहीं हैं और शरीर रह सके ऐसी चीज नहीं है। किंतु छूटनेवाले शरीर को 'मैं' और इससे सम्बन्धित चीजों को 'मेरा' मानना, यह अध्यास का मूल है।

अध्यास दो प्रकार का होता है :

(१) अन्योन्याध्यास (२) संसर्गाध्यास

अन्योन्याध्यास : जब किसी पुल पर से रेलगाड़ी गुजर रही हो और नीचे से आपकी कार जाय तो आपका सिर नीचे हो जाता है। हालाँकि रेलगाड़ी और आपके सिर के बीच कार की छत और पुल भी तो होता है। फिर भी आप सिर नीचे झुका देते हैं। यह अन्योन्याध्यास है।

संसर्गाध्यास : एक-दूसरे के संसर्ग में आकर दूसरे के संस्कारों के अनुसार खुद भी मानने लगें कि 'यदि हमें यह नहीं मिला तो हमारा जीवन बेकार है... यह मिल जाय तो सुख है...।' तो यह संसर्गाध्यास है। लोभी के संसर्ग से धनाध्यास बढ़ जायेगा। मोही के संसर्ग से परिवार का अध्यास बढ़ जायेगा। कामी के संसर्ग से काम-अध्यास बढ़ जायेगा। चिन्तित के संसर्ग से चिन्ताओं और कल्पनाओं का अध्यास बढ़ जायेगा लेकिन संतों के संसर्ग से, भगवान की कथा से इस अध्यास की पोल खुल जायेगी और साक्षी सच्चिदानंद परमात्मा की यात्रा के द्वार खुल जायेंगे।

सातवें अध्याय का माहात्म्य

भगवान शिव कहते हैं : पार्वती! अब मैं सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानों में अमृत-राशि भर जाती है। पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है, जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगर में शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था, उसने वैश्य-वृत्ति का आश्रय लेकर बहुत धन कमाया, किंतु न तो कभी पितरों का तर्पण किया और न देवताओं का पूजन ही। वह धनोपार्जन में तत्पर होकर राजाओं को ही भोज दिया करता था।

एक समय की बात है। उस ब्राह्मण ने अपना चौथा विवाह करने के लिए पुत्रों और बन्धुओं के साथ यात्रा की। मार्ग में आधी रात के समय जब वह सो रहा था, एक सर्प ने कहीं से आकर उसकी बाँह में काट लिया। उसके काटते ही ऐसी अवस्था हो गयी कि मणि, मंत्र और औषधि आदि से भी उसके शरीर की रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात् कुछ ही क्षणों में उसके प्राण-पखेरू उड़ गये फिर बहुत समय के बाद वह प्रेत सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ। उसका चित्त धन की वासना में बँधा था।

उसने पूर्व वृत्तान्त को स्मरण करके सोचा : 'मैंने जो घर के बाहर करोड़ों की संख्या में अपना धन गाड़ रखा है, उससे इन पुत्रों को वंचित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।'

एक दिन साँप की योनि से पीड़ित होकर पिता ने स्वप्न में अपने पुत्रों के समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया, तब उसके [illegible] पुत्रों ने सवेरे उठकर बड़े विस्मय के साथ एक-दूसरे

से स्वप्न की बातें कहीं । उनमें से मझला पुत्र कुदाल हाथ में लिये घर से निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थान पर गया । यद्यपि उसे धन के स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नों से उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धि से वहाँ पहुँचकर बाँबी को खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबी से एक बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोला : 'ओ मूढ़ ! तू कौन है, किसलिए आया है, क्यों बिल खोद रहा है, अथवा किसने तुझे भेजा है ? ये सारी बातें मेरे सामने बता।'

पुत्र बोला : मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है । मैं रात्रि में देखे हुए स्वप्न से विस्मित होकर यहाँ का सुवर्ण लेने के कौतूहल से आया हूँ।

पुत्र की यह वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्च स्वर से इस प्रकार स्पष्ट वचन बोला : 'यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर। मैं पूर्वजन्म के गाड़े हुए धन के ही लिए सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ।'

पुत्र ने पूछा : पिताजी ! आपकी मुक्ति कैसे होगी ? इसका उपाय मुझे बताइये, क्योंकि मैं सब लोगों को छोड़कर आपके पास आया हूँ।

पिता ने कहा : बेटा ! गीता के अमृतमय सप्तम अध्याय को छोड़कर मुझे मुक्त करने में तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीता का सातवाँ अध्याय ही प्राणियों के जरा-मृत्यु आदि दुःखों को दूर करनेवाला है। पुत्र ! मेरे श्राद्ध के दिन सप्तम अध्याय का पाठ करनेवाले ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ । इससे निःसन्देह मेरी मुक्ति हो जायेगी। वत्स ! अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण श्रद्धा के साथ वेद-विद्या में प्रवीण अन्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराना।

सर्पयोनि में पड़े हुए पिता के ये वचन सुनकर सभी पुत्रों ने उसकी आज्ञा के अनुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शंकुकर्ण ने अपने सर्पशरीर को त्यागकर दिव्य देह धारण की और सारा धन पुत्रों के अधीन कर दिया। पिता ने करोड़ों की संख्या में जो धन बाँटकर दिया, उससे वे सदाचारी पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्म में लगी हुई थी, इसलिए उन्होंने बावली, कुआँ, पोखर, यज्ञ तथा देवमन्दिर के लिए उस धन का उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात् सातवें अध्याय का सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। पार्वती ! यह तुम्हें सातवें अध्याय का माहात्म्य बताया गया है, जिसके श्रवणमात्र से मानव सब पातकों से मुक्त हो जाता है। *('पद्मपुराण' से)*

श्रीमद्भगवद्गीता के सातवें अध्याय के कुछ श्लोक

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्‌भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं। (१४)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे आसुर-स्वभाव को धारण किये हुए, मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़ लोग मुझको नहीं भजते। (१५)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है। (१९)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

परंतु निष्कामभाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करनेवाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकार से भजते हैं। (२८)

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

जो मेरी शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को, सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं। (२९)

बलि का विवेक

⁂ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁂

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' के उपशम प्रकरण में आता है :

महापराक्रमी, विरोचनपुत्र बलि एक दिन ऊँचे झरोखे से आकाश की ओर निहारने लगा।

पृथ्वीतत्त्व से अधिक पवित्र जलतत्त्व होता है। जलतत्त्व से पवित्र तेजतत्त्व होता है। तेजतत्त्व से पवित्र वायुतत्त्व होता है और वायुतत्त्व से भी ज्यादा पवित्र आकाशतत्त्व होता है। इसीलिए योगी बार-बार आकाश की ओर निहारते हैं। निराकार आकाश की ओर निहारने से तमाम परिच्छिन्न कल्पनाओं की दीवारें बिखर जाती हैं, राग-द्वेष कम हो जाता है। जो लोग आकाश की तरफ दृष्टि करके ध्यान करते हैं, विचार करते हैं उनके विचार विशाल होते हैं। विशाल विचारों में आत्मविवेक पैदा हो जाय तो कहना ही क्या ?

जिसके यहाँ भगवान को भी वामनरूप लेकर आना पड़ा था, ऐसा ओजस्वी-तेजस्वी बलि सोचने लगा कि 'मैंने करोड़ों वर्षों तक भोग भोगे हैं, राज्य किया है।' आप चौंक मत जाना कि करोड़ों वर्ष राज्य कैसे किया होगा ! करोड़ों वर्ष भी कोई जी सकता है क्या ?

हर जीव का अपना देश-काल और अपनी आयु-मर्यादा होती है। जैसे- शरीर में अमुक जंतु ऐसे होते हैं कि तुम्हारे एक दिन में उनका एक युग बीत जाता है। काल अथाह है। जैसा-जैसा जीव है, जैसी-जैसी उसकी कल्पना है वैसे-वैसे उसके दिन और वर्ष होते हैं। चींटी के दिन और वर्ष चींटी जाने। बैक्टीरिया के दिन और वर्ष बैक्टीरिया जाने। चूहे के दिन और वर्ष चूहा जाने...

राजा बलि विचार करता है कि 'इस बड़े चक्रवर्ती राज्य से मुझे क्या प्रयोजन है ? यद्यपि त्रिलोकी का राज्य बड़ा है तो भी इसमें आश्चर्य क्या है ? इसमें मैं चिरकाल से भोग भोगता रहा हूँ। ये भोग उपजकर फिर नष्ट हो जाते हैं। परंतु इनसे मुझे शांति, सुख प्राप्त नहीं हुए।'

इस प्रकार बलि का विवेक जगा और वह विचार करने लगा कि 'मेरा इतना बड़ा राज्य है, मेरे पास इतनी संपदा है - यह सब मन की कल्पना के अतिरिक्त क्या है ? मैंने तो अपना समय यूँ ही बरबाद कर दिया। जिंदगी के कीमती दिन ऐसे ही बीत गये। बालकबुद्धि से लगता है कि नश्वर भोगों में मजा है और उन्हें भोगते-भोगते जीवन बीत जाता है। मौत कब आकर गला दबोच ले, कोई पता नहीं।

मैं तो बड़ा भारी मूर्ख रहा जो इन नश्वर वस्तुओं को सँभालता रहा क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे छोड़कर मरना न पड़े। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है जो टूटे नहीं। ऐसा कोई शरीर नहीं है जिसकी मौत न हो। मैं इन छूटनेवाली वस्तुओं, टूटनेवाले सम्बन्धों और मरनेवाले शरीरों के पीछे ही जीवन खपा रहा था।

अब मन से इनकी आसक्ति हटाकर मौन के माधुर्य को पाऊँगा, भगवान से प्रीति करूँगा। जो पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा उस परमेश्वर के ध्यान में, ज्ञान में और आनंद में ही अपने को धन्य बनाऊँगा।'

कितने भी भोग भोगो, कितना भी धन एकत्रित करो, आखिर क्या ? धन इकट्ठा कोई और करता है लेकिन भोगता कोई और है। जो धन बेटों से बचाया जाता है, वही अंत में बेटों को या परिवारवालों को देकर जाना पड़ता है। जिस सम्पत्ति को जीवनभर कमाया, सँभाला, वही अंत में किसीको देकर जाना पड़ेगा। जिस शरीर से प्रीति की, वह शरीर भी साथ में नहीं जायेगा और जिन कुटुंबीजनों से स्नेह किया, वे भी अंत में छूट जायेंगे। आखिर क्या ? संसार में ऐसा कुछ सार नहीं, जिसे अंगीकार किया जा सके।

बलि कहता है कि 'मैं ऐसा हूँ... मैं वैसा हूँ... ।' - यह मेरी बालकबुद्धि थी। मूर्खों एवं अज्ञानियों के संग में रहकर मैंने अपनी आत्मा का

ज्ञान नहीं पाया और अज्ञानवश नश्वर शरीर को ही 'मैं' मानता रहा । मेरा कीमती आयुष्य नश्वर चीजों में ही बरबाद हो गया । अब मैं इस कीमती आयुष्य को कीमती-से-कीमती परमात्मा की प्राप्ति में ही लगाऊँगा ।

बलि का विवेक जगा । जब तक विवेक नहीं जगता तब तक मनुष्य, मनुष्य कहलाने के लायक नहीं होता । विवेक प्रकट होकर फिर शांत भी हो सकता है क्योंकि अविवेक का प्रभाव ज्यादा रहता है । अतः विवेक टिकना भी चाहिए । विवेक पैदा हो जाने पर उसे संतों के दर्शन, सत्संग व सद्विचार से तथा प्राचीन ऋषियों के इतिहास से सींचना चाहिए ।

बलि का विवेकरूपी अंकुर फूटा । उसने उस अंकुर की ठीक से सिंचाई की जिससे उसका मन भोगरूपी विषैले पदार्थों को छोड़कर विवेक-वैराग्यरूपी अमृत का पान करने लगा ।

विवेकी लोग विरले होते हैं । यदि क्षणभर के लिए भी विवेक आ जाय तो उसे टिकाने का यत्न करना चाहिए । जैसे- बीज में से अंकुर फूटने के बाद यदि उसकी सिंचाई और सुरक्षा न की जाय तो वह वृक्ष बनने से पूर्व ही मुरझा सकता है । जरा-सी आँधी और तूफान से वह टूट सकता है । ऐसे ही जीवन में कभी-कभी विवेक का अंकुर फूटता है । किंतु उसके बाद उसकी सिंचाई और सुरक्षा नहीं होगी तो वह पुनः नष्ट हो जायेगा ।

विवेकरूपी अंकुर बड़ा होकर वैराग्यरूपी वृक्ष बनता है । वैराग्यरूपी वृक्ष के बड़े होने पर उसमें षट्सम्पत्तिरूपी फूल प्रकट होते हैं और आत्म-साक्षात्काररूपी फल लगता है ।

जैसे आम के पेड़ पर पहले बौर लगते हैं फिर आम लगता है, ऐसे ही वैराग्यरूपी वृक्ष पर मोक्षरूपी फल प्रकटने से पहले शम, दम, तितिक्षा आदि सद्गुण प्रकट होने लगते हैं । इन सारे सद्गुणों की नींव है - विवेक ।

जब तक व्यक्ति शुभकर्म नहीं करता, तब तक विवेक नहीं जगता । कई जन्मों के शुभकर्म जब फल देने को तत्पर होते हैं तब धन-धान्य और यश मिलता है । लेकिन जब आत्यंतिक सात्त्विक शुभकर्म फल देने को तत्पर होते हैं तब विवेक जगता है । पुण्य से धन और यश मिलता है लेकिन महापुण्य से विवेक जगता है जो महापुरुषों के पास ले जाता है ।

विवेक जगने पर बलि ने विचार किया कि 'मेरा अज्ञान तभी नष्ट होगा, जब गुरु शुक्राचार्यजी प्रसन्न होकर मुझे उपदेश देंगे ।' ऐसा विचारकर बलि ने गुरु शुक्राचार्य का ध्यान किया और वे अपने शिष्य बलि के समक्ष प्रकट हो गये । बलि ने गुरुदेव का अर्घ्य-पाद्य से पूजन करके उन्हें सिंहासन पर बिठाया और कहा :

''हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैं मोह में फँसानेवाले भोगों से विरक्त हुआ हूँ और तत्त्वज्ञान की इच्छा करता हूँ, जिससे महामोह निवृत्त हो । इस ब्रह्मांड में कौन-सी वस्तु स्थिर है और उसका प्रमाण कितना है ? 'इदं' क्या है और 'अहं' क्या है ? मैं कौन हूँ, आप कौन हैं और ये लोक क्या हैं ? कृपा करके इन प्रश्नों के उत्तर कहिये ।''

तब शुक्राचार्य ने कहा : ''हे दैत्यराज ! बहुत कहने से क्या है ? सबका सार संक्षेप में तुमसे कहता हूँ, सो सुनो । जो चेतनतत्त्व विस्तृतरूप है वही चिन्मात्र है और चेतन ही व्यापक है । तू भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हूँ और ये लोक भी चेतनरूप हैं । यही सबका सार है ।

हे राजन् ! चेतन को जो चैत्यकला का सम्बन्ध है वही बंधन है । इससे जो मुक्त है वही वास्तव में मुक्त है । आत्मतत्त्व चेतनरूप चैत्यकलना से रहित है । यह सब सिद्धांतों का संग्रह है ।

हे राजन् ! इस निश्चय को हृदय में दृढ़ करके उसकी धारणा करोगे तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धि से अपने को आपसे देखोगे और उससे विश्रांतिमान होगे । यही आत्मपद की प्राप्ति है ।''

ऐसा कहकर गुरु शुक्राचार्य आकाशमार्ग से चले और अंतर्धान हो गये । बलि गुरु के उपदेश का मनन करने लगा और आत्मपद को प्राप्त हो गया ।

विवेक प्रकट होता है सत्संग के द्वारा । मनुष्य को चाहिए कि सत्संग से विवेक को प्रकटाये और चिन्तन-मनन से विवेक को बढ़ाये । फिर उसके लिए भी वह पद पाना आसान हो जायेगा जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता और संतजन रमण करते हैं ।

'हम खिलाकर खाते हैं...'

[चेटीचंड : ३ अप्रैल २००३]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

भगवान झुलेलाल का अवतार माने उत्साह बढ़ानेवाला अवतार... प्रेरणा देनेवाला अवतार... दुष्ट प्रकृति के मरख जैसे धर्मान्धों के साथ लोहा लेने की, अपने हक के लिए बुलंद आवाज उठाने की प्रेरणा देनेवाला अवतार... अपने हृदय में छुपी हुई परमात्मा की शक्तियों को जगाने की प्रेरणा देनेवाला अवतार... सस्नेह संगठित होकर एक-दूसरे को मददगार होने की प्रेरणा देनेवाला अवतार...

जब भगवान झुलेलाल का अवतरण हुआ तब उनकी माँ देवकी ने उन्हें पयपान (दुग्धपान) कराना चाहा, लेकिन बालक पयपान करे ही नहीं, मुँह घुमा दे ! वैद्यों और पंडितों को बुलाया गया, झाड़-फूँकवालों को भी बुलाया गया, बालक की नजर उतारी गयी फिर भी बालक ने पयपान न किया... आखिर बालक से ही प्रार्थना की गयी : ''बालक ! तू कौन है ? दुग्धपान क्यों नहीं करता ?''

जैसे श्रीकृष्ण ने मुख खोलकर उसमें यशोदाजी को त्रिलोकी दिखा दी थी, ऐसे ही भगवान झुलेलाल ने मुख खोला तो उसमें लहराता हुआ समुद्र दिखा और समुद्री जीव-जलचर आदि भी दिखे ! जरा-सा मुख और पूरा सागर लहरा रहा है !

माँ थोड़ी देर शांत हो गयी तो उसे अंतःप्रेरणा हुई कि 'हम खिलाकर खाते हैं... जीव का स्वभाव है अकेले खाना और ईश्वर का स्वभाव है खिलाकर खाना।'

माँ ने लोगों से यह बात कही। लोग समुद्र-किनारे गये और चावल, गुड़ आदि चीजें समुद्री जीव-जंतुओं के लिए डालीं। मीठे चावल (जिसे सिंधी भाई ताहिंरी बोलते हैं) भी डाले। फिर समुद्र का जल लाकर घर में उसका छिड़काव किया। जब उस बालक पर भी जल की अंजलि डाली गयी तब उसने दूध पीना शुरू किया।

डेढ़ वर्ष की उम्र में बालक झुलेलाल का मुण्डन-संस्कार हुआ और ५ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत-संस्कार। बाद में उन्हें एक ब्राह्मण के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि ब्राह्मण उन्हें जितना पढ़ाता था उससे आगे का भी वे उसे सुना देते थे। ८ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने वेद-वेदान्त और नीतिशास्त्र के सारे ग्रंथों का सार समझ लिया।

एक दिन वे अपने पिता के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक ऋषि मिले। ऋषि भी साधारण न थे, भगवान शिव ही ऋषिरूप में आये थे ! पिता ने ऋषि को प्रणाम किया और प्रार्थना की : ''ऋषिवर ! आप मेरे इस बालक को मंत्रदीक्षा देने की कृपा करें। इसके जीवन में आध्यात्मिक प्रकाश हो, इसको भोग और मोक्ष, दोनों की प्राप्ति हो।''

इतने में गोरखनाथजी वहाँ से गुजरे। उन्होंने बालरूप में लीला कर रहे भगवान झुलेलाल और ऋषिरूप में लीला कर रहे भगवान शंकर को पहचान लिया। ऋषि-वेशधारी भगवान शंकर ने पिता रत्नराय से कहा : ''ये जोगी गोरखनाथ हैं। ये ही बालक को मंत्रदीक्षा दें तो उचित होगा।''

भगवान शंकर ने गोरखनाथजी से कहा : ''गोरखनाथ ! आप इस बालक को दीक्षा दो।''

गोरखनाथजी ने उनसे कहा : ''यह बालक तो जन्मजात सिद्ध है। ये भगवान वरुण के अवतार हैं और धर्म की स्थापना करने के लिए आये हैं। मरख के जुल्मों से जो सिंधी शोषित हुए थे उन्होंने व्रत-उपवास, अर्चना-उपासना की। उसके फलस्वरूप ये प्रकट हुए हैं। इनको मैं कैसे दीक्षा दूँ ?''

शिवजी ने कहा : ''मर्यादा स्थापित करने के लिए अवतार स्वयं गुरु से दीक्षा लेते हैं। श्रीरामजी ने रामावतार में और श्रीकृष्णजी ने कृष्णावतार में ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ली थी। अतः झुलेलाल को आप मंत्रदीक्षा दें।''

भगवान शंकर की आज्ञा शिरोधार्य करके जोगी गोरखनाथ ने झुलेलालजी को मंत्रदीक्षा दी और कहा : ''आप जिंद पीर होकर पूजे जाओगे और जो आपके प्रतीकों - जल और ज्योत की उपासना करेंगे, आपका स्मरण कर अपना मनोबल, चरित्रबल एवं श्रद्धाबल बढ़ायेंगे, वे इहलोक सुखी - परलोक सुखी पद को पायेंगे। संसार को स्वप्न समझकर तथा अपनी आत्मा को नित्य जानकर वे संसार-सागर से तर जायेंगे।''

राग-द्वेष से परे हों...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

राग चाहे स्वर्ग में हो चाहे नौकरी में, द्वेष चाहे बुरी वस्तु से हो चाहे भली वस्तु से लेकिन ये जिस अंतःकरण में रहते हैं उसको परिच्छिन्न बनाये रखते हैं। राग-द्वेषवाले बार-बार जन्मेंगे और बार-बार मरेंगे । अतः भाई-बहनो ! राग-द्वेष से प्रेरित प्रवृत्ति करते समय दस बार विचार करो । कर्तव्य व प्रभु-प्रेरित कर्तव्य करनेवाले धनभागी हैं !

जिसके अंतःकरण में राग-द्वेष है उसको नष्ट हुआ ही समझो । राग-द्वेष अपने में नहीं हैं, मन में बैठे हैं और मन बैठा है अनुकूलता-प्रतिकूलता में। जब तक संसार रहेगा तब तक अनुकूलता-प्रतिकूलता रहेगी। अगर मन के साथ जुड़कर जिये, शरीर और संसार को सत्य माना तो राग-द्वेष जायेगा नहीं। राग-द्वेष नहीं जायेगा तो फिर जन्म-मरण कैसे खत्म होगा ?

जिसका राग-द्वेष चला गया वह मानों, परमेश्वर ही है । उसने परम ऐश्वर्य पा लिया है । दुनिया का कोई भी ऐश्वर्य उसकी समता के आगे महत्त्व नहीं रखता। दुनिया तो क्या स्वर्ग का ऐश्वर्य भी उसके आगे महत्त्व नहीं रखता।

तत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्रादयः सर्वदेवताः ।
अहो तत्र स्थितो योगी हर्षमहर्षं न उपगच्छति ॥

'जिस पद को पाये बिना इन्द्रादि देव भी अपने को दीन मानते हैं, उस पद को पाने के बाद योगी को हर्ष-शोक नहीं होता, अहंकार नहीं होता।' कितनी ऊँची बात है !

जड़भरत को कहारों से डाँट पड़ती है, रहूगण राजा की डाँट-फटकार पड़ती है फिर भी जड़भरत के चित्त में उनके प्रति द्वेष नहीं होता और जब रहूगण चरणों में पड़ता है तब जड़भरत को राग नहीं होता। इस प्रकार जब अपमान की पराकाष्ठा हो जाती है तब भी उनके चित्त में शोक नहीं होता और मान की पराकाष्ठा हो जाती है तब भी हर्ष नहीं होता। ऐसे जड़भरत की महिमा 'श्रीमद्भागवत' में आयी है।

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं कि 'हे रामजी ! राग और द्वेष से ही आदमी चलित होता है। वह पुरुष परम ऐश्वर्य को पाया हुआ है जो राग और द्वेष से रहित है।'

उपनिषद् में एक प्रश्न आया है कि **विदूषानां किं लक्षणम्** ? अर्थात् विद्वानों का क्या लक्षण है ? पोथी पढ़कर विद्वान हुए हों, ऐसे विद्वान नहीं, जो वास्तव में विद्वत्ता को प्राप्त हुए हैं ऐसे विद्वान... जहाँ से सारी विद्याएँ प्रकट होती हैं उस परमेश्वर को जो प्राप्त हुए हैं, उन महापुरुषों का लक्षण क्या है ?

इसका उत्तर आया है कि **अदृढः रागद्वेषः ।** उन महापुरुषों का राग-द्वेष अदृढ़ होता है।

साधारण चित्तवाले का राग-द्वेष लोहे पर लकीर के समान होता है । थोड़ी-बहुत पूजा-पाठादि करनेवाले का राग-द्वेष होता है मिट्टी में लकीर के समान। उत्तम साधक का राग-द्वेष होता है बालू में लकीर के समान। किंतु विद्वान पुरुष का, ब्रह्मवेत्ता का राग-द्वेष व्यवहार काल में दिखेगा लेकिन होगा बहते पानी में लकीर के समान।

जिन्होंने अपने सत्पद को पा लिया है, जो अपने सत्यस्वरूप में ठहरे हैं, उनको मिथ्या मिथ्या दिखता है। जैसे, तुमको चलचित्र मिथ्या दिखता है। चलचित्र के कुछ दृश्य देखकर तुम हँसते भी हो और कभी गमगीन भी हो जाते हो । किंतु बाहर निकलकर ऐसा नहीं कहते कि 'अरे, इतने लोग मर गये... ऐसा हो गया... वैसा हो गया...' क्योंकि आप जानते हो कि वह चलचित्र है, वास्तविक नहीं है।

जैसे, पर्दे पर दिखता हुआ चलचित्र वास्तविक नहीं है, केवल विद्युत का चमत्कार है। वैसे ही संसाररूपी चलचित्र भी वास्तविक नहीं है, चैतन्यरूपी प्रकाश का चमत्कार है। जो चैतन्यरूपी प्रकाश को अपने 'मैं' रूप में जानते हैं, उनको सारा

जगत अपना स्वरूप दिखता है तो वे राग-द्वेष किससे करेंगे ? जैसे, आप अपने दायें हाथ से राग और बायें हाथ से द्वेष करेंगे क्या ? नहीं, क्योंकि दोनों हाथ आपके ही हैं ।

जिन खदानों से कोयला निकलता है उन्हींसे कालांतर में हीरा भी निकल सकता है। एक ही गुलाब के पौधे पर फूल भी होते हैं और काँटे भी। इसी प्रकार सुख और दुःख भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि आप इनको सच्चा मानेंगे तो राग-द्वेष होता रहेगा । किंतु इनके मिथ्यात्व का चिन्तन करेंगे तो राग-द्वेष शिथिल होने लगेगा । इनके मिथ्यात्व का चिन्तन जिस सत्य से किया जाता है उसको 'मैं' रूप में समझ लें, उसका मनन करें, निदिध्यासन करें, अपने 'मैं' रूप में साक्षात्कार करें तो फिर राग-द्वेष नहीं रहेगा । आप परमेश्वरस्वरूप हो जायेंगे अर्थात् परम ऐश्वर्यवाले हो जायेंगे ।

फिर संसार के किसी भी ऐश्वर्य में, संसार की किसी भी सुख-सुविधा में आपका राग नहीं होगा और संसारी दृष्टि से कुछ घाटा हो जाय या अपमान हो जाय तब उससे द्वेष नहीं होगा । जैसे - मेघ बरसें या न बरसें इससे धरती प्रभावित होगी। यदि बारिश ठीक से हुई तो धरती लहलहायेगी किंतु आकाश को क्या ? मेघ कितने भी बरसें आकाश में बाढ़ नहीं आयेगी और न बरसें तो सूखा नहीं पड़ेगा। आकाश तो निर्लेप है। 'पंचदशी' में आया है :

मायामेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा।
चिदाकाशस्य नो हानिर्न वा लाभ इति स्थितिः ॥

'मायारूपी मेघ जगतरूपी जल की वर्षा चाहे जैसे करे, न इससे चिदाकाश का कुछ लाभ है न हानि, यह सिद्धांत है।' **(पंचदशी : ८.७५)**

महाकाश से भी ज्यादा सूक्ष्म है चिदाकाश। उस चिदाकाशस्वरूप को 'मैं' रूप में जिसने ठीक से जान लिया, उस परमेश्वर-पद को जिसने पा लिया फिर उसका राग-द्वेष अदृढ़ हो जाता है।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि 'हे रामजी ! जिसका राग-द्वेष चला गया है उसको तुम ईश्वर जानो और जो राग-द्वेष में चलित होते रहते हैं, उनसे बचने का यत्न नहीं करते उनको तुम नष्ट हुआ जानो। वे कोल्हू के बैल बनेंगे फिर भी दुःख से न बचेंगे ।'

राम-राज्य : आदर्श राज्य

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

रामावतार को लाखों वर्ष हो गये, विद्वान मानते हैं कि नौ लाख वर्ष हो गये लेकिन श्रीरामजी अभी भी जनमानस के हृदय-पटल से विलुप्त नहीं हुए। क्यों ? क्योंकि श्रीरामजी का आदर्श जीवन, उनका आदर्श चरित्र, उस जीवन की कहानी है जो हर मनुष्य के लिए अनुकरणीय है। 'श्रीरामचरित-मानस' में वर्णित यह आदर्श चरित्र विश्वसाहित्य में मिलना दुर्लभ है।

एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पिता, आदर्श शिष्य, आदर्श योद्धा और आदर्श राजा के रूप में यदि किसीका नाम लेना हो तो भगवान श्रीरामजी का ही नाम सबकी जुबान पर आता है। इसीलिए राम-राज्य की महिमा आज लाखों-करोड़ों वर्षों के बाद भी गायी जाती है।

भगवान श्रीरामजी के सद्गुण ऐसे तो विलक्षण थे कि पृथ्वी के प्रत्येक धर्म, संप्रदाय और जाति के लोग उन सद्गुणों को अपने जीवन में अपनाकर लाभान्वित हो सकते हैं।

श्रीरामजी सारगर्भित बोलते थे । उनसे कोई मिलने आता तो वे यह नहीं सोचते थे कि पहले वह बात शुरू करे या मुझे प्रणाम करे। सामनेवाले को संकोच न हो इसलिए श्रीरामजी अपनी तरफ से ही बात शुरू कर देते थे।

श्रीरामजी प्रसंगोचित बोलते थे । जब उनके राजदरबार में धर्म की किसी बात पर निर्णय लेते समय दो पक्ष हो जाते थे, तब जो पक्ष उचित होता श्रीरामजी उसके समर्थन में इतिहास, पुराण और पूर्वजों के निर्णय उदाहरणरूप में कहते । जिससे

अनुचित बात का समर्थन करनेवाले पक्ष को भी लगे कि दूसरे पक्ष की बात सही है।

श्रीरामजी दूसरों की बात बड़े ध्यान व आदर से सुनते थे। बोलनेवाला जब तक अपने और औरों के अहित की बात नहीं कहता, तब तक वे उसकी बात सुन लेते थे। जब वह किसीकी निन्दा आदि की बात करता तब देखते कि इससे इसका अहित होगा या इसके चित्त का क्षोभ बढ़ जायेगा या किसी दूसरे की हानि होगी। तब वे सामनेवाले की बातों को सुनते-सुनते इस ढंग से बात मोड़ देते कि बोलनेवाले का अपमान नहीं होता था।

'महाभारत' में पितामह भीष्म ने कहा है कि 'बाणों से बिंधा और फरसे से कटा हुआ वन फिर से अंकुरित हो जाता है, किंतु दुर्वचनरूपी शस्त्र से किया हुआ भयंकर घाव कभी नहीं भरता।' जो कटु वाणी से दूसरे के दिल को चोट पहुँचाता है, वह पापियों के लोक में जाता है। श्रीरामजी तो शत्रुओं के प्रति भी कटु वचन नहीं बोलते थे।

युद्ध के मैदान में श्रीरामजी एक बाण से रावण के रथ को जला देते, दूसरा बाण मारकर उसके हथियार उड़ा देते फिर भी उनका चित्त शांत और सम रहता था। वे रावण से कहते : 'लंकेश! जाओ, कल फिर तैयार होकर आना।'

ऐसा करते-करते काफी समय बीत गया तो देवताओं को चिन्ता हुई कि रामजी को क्रोध नहीं आता है, वे तो समता के सिंहासन पर आरूढ़ हैं फिर इस पापी रावण का नाश कैसे होगा? लक्ष्मण, हनुमान आदि को भी चिन्ता हुई, तब दोनों ने मिलकर प्रार्थना की : 'प्रभु! थोड़े कोपायमान होइये।'

तब श्रीरामजी ने क्रोध का आह्वान किया : '**क्रोधं आह्वायामि**। क्रोध! अब आ जा।'

श्रीरामजी क्रोध का उपयोग तो करते थे लेकिन क्रोध के हाथों में नहीं आते थे। हम लोगों को क्रोध आता है तो क्रोधी हो जाते हैं... लोभ आता है तो लोभी हो जाते हैं... मोह आता है तो मोही हो जाते हैं... शोक आता है तो शोकातुर हो जाते हैं... लेकिन श्रीरामजी को जिस समय जिस साधन की आवश्यकता होती थी, वे उसका उपयोग कर लेते थे।

आप विश्वविद्यालय की खूब पदवियाँ ले लो, धन के भण्डार एकत्रित कर लो, सत्ता के शिखरों पर पहुँच जाओ किंतु यदि इन पाँच साधनों (काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार) का उपयोग करने की कला नहीं आयी और इन पाँच साधनों ने ही आपका उपयोग कर लिया तो आप सच्चे सुख से, अपने आत्मसुख से वंचित रह जाओगे।

श्रीरामजी का अपने मन पर बड़ा विलक्षण नियंत्रण था। चाहे कोई सौ अपराध कर दे फिर भी रामजी अपने चित्त को क्षुब्ध नहीं होने देते थे। **सामनेवाला व्यक्ति अपने ढंग से सोचता है, अपने ढंग से जीता है। अतः वह आपके साथ अनुचित व्यवहार कर सकता है। लेकिन उसके ऐसे व्यवहार से अशांत होना-न होना आपके हाथ की बात है।**

यह जरूरी नहीं है कि सब लोग आपके मन के अनुरूप ही जियें। कभी पति के मन के अनुसार होगा तो कभी पत्नी के। कभी बच्चे के मन के अनुसार होगा तो कभी बच्ची के। कभी नेता के मन के अनुसार होगा तो कभी जनता के। जब व्यक्ति आग्रह रखता है कि मेरे मन के अनुसार ही हो, तभी वह दुःख पाता है। यदि उसके मन के अनुकूल कुछ होता है तो उसे सुख होता है और मन के अनुकूल नहीं होता तो दुःख होता है।

श्रीरामजी अर्थ-व्यवस्था में भी निपुण थे। अर्थ के चार भाग करने चाहिए : एक भाग गुप्तरूप से धर्म के उपार्जन के लिए, एक भाग संग्रह के लिए, एक भाग परिजनों के पालन के लिए और एक भाग अपने लिए। 'शुक्रनीति' और 'मनुनीति' में भी आया है कि जो धर्म, संग्रह, परिजन और अपने लिए, इन चार भागों में अर्थ की ठीक से व्यवस्था करता है वह आदमी इस लोक और परलोक में सुख-आराम पाता है।

कई लोग लोभ-लालच में इतना अर्थ-संग्रह कर लेते हैं कि वही अर्थ उनके लिए अनर्थ का कारण हो जाता है और कई लोग इतने खर्चीले हो जाते हैं कि कमाया हुआ सब धन उड़ा देते हैं, फिर कंगालियत में जीते हैं। श्रीरामजी धन के उपार्जन

में भी कुशल थे और उपयोग में भी । जैसे मधुमक्खी पुष्पों को हानि पहुँचाये बिना उनसे परागकण ले लेती है, ऐसे ही श्रीरामजी प्रजा से ऐसे ढंग से कर (टैक्स) लेते कि प्रजा पर बोझ न पड़े। वे प्रजा के हित का चिन्तन तथा उसके भविष्य का सोच-विचार करके ही कर लेते थे।

प्रजा के संतोष तथा विश्वास-सम्पादन के लिए श्रीरामजी राज्यसुख, गृहस्थसुख और राज्यवैभव का त्याग करने में भी संकोच नहीं करते थे । इसीलिए श्रीरामजी का राज्य, आदर्श राज्य माना जाता है।

राम-राज्य का वर्णन करते हुए 'श्रीरामचरित-मानस' में आता है :

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी।
सकल परम गति के अधिकारी ॥

'राम-राज्य में सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेद-मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक और न कोई रोग ही सताता है।

राम-राज्य में किसीको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री, सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।' (श्रीरामचरित. उ.कां. : २०.१,२)

*

हनुमानजी की अनन्य श्रीरामनिष्ठा

[हनुमान जयंती : १६ अप्रैल २००३]

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम् ।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

'जहाँ-जहाँ श्रीराम-कथा होती है, वहाँ-वहाँ असुरनिकन्दन श्री हनुमानजी नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे तथा ललाट से बद्धांजलि लगाये उपस्थित रहते हैं।'

हनुमानजी की श्रीराम-निष्ठा अद्वितीय है !

एक बार श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी से कहा : ''हनुमान ! यदि तुम मुझसे कुछ माँगते तो मेरे मन को बहुत संतोष होता। अतः आज तो कुछ अवश्य माँग लो।''

तब हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा :

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥

'श्री राजराजेन्द्र प्रभो ! मेरा परम स्नेह नित्य ही आपके श्रीपाद-पद्मों में प्रतिष्ठित रहे। हे श्रीरघुवीर ! आपमें ही मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। आपके अतिरिक्त और कहीं मेरा अनुराग न हो। कृपया आप मुझे यही वरदान दें।'

इस अनन्य निष्ठा को एक अन्य प्रसंग में हनुमानजी ने और अधिक स्पष्टरूप से व्यक्त किया है :

रामादन्यं नमेच्चेत् पततु शिरसि मे कालदण्डः प्रचण्डो ।
जिह्वामेतां द्विजिह्वो दशतु रघुपतेर्नामतोऽन्यं जपेच्चेत् ॥
दम्भोलिर्मामकीनं विदलतु हृदयं चिन्तयेच्चेत्ततोऽन्यं ।
जानीते सर्ववेत्ता सकलहृदिगतो वेत्तु वान्यो न वेत्तु ॥

'श्रीराम-पदारविंदों को त्यागकर यदि मेरा मस्तक किसी अन्य के चरणों में झुके तो मेरे सिर पर तत्काल प्रचंड कालदंड का प्रहार हो। मेरी जिह्वा श्रीराम-नाम के अतिरिक्त यदि अन्य तुच्छ मंत्रों का जप करे तो दो जिह्वाओंवाला काला भुजंग उसे डस ले। मेरा हृदय यदि श्रीराघवेन्द्र प्रभु को भूलकर अन्य किसीका चिन्तन करे तो भयंकर वज्र उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मैं यह सत्य कहता हूँ अथवा औपचारिक चाटुकारिता मात्र ही है, इस बात को सर्वान्तर्यामी आप तो पूर्णरूप से जानते ही हैं, अन्य कोई जाने या न जाने।'

कैसी है हनुमानजी की अनन्य श्रीराम-निष्ठा !

माँ का दूध

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

माँ अंजना ने तप करके हनुमान जैसे पुत्र को पाया था। वे हनुमानजी में बाल्यकाल से ही भगवद्भक्ति के संस्कार डाला करती थीं, जिसके फलस्वरूप हनुमानजी में श्रीराम-भक्ति का प्रादुर्भाव हो गया। आगे चलकर वे प्रभु के अनन्य सेवक के रूप में प्रख्यात हुए - यह तो सभी जानते हैं।

भगवान श्रीराम रावण का वध करके माँ सीता, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, जांबवान आदि के साथ अयोध्या लौट रहे थे। मार्ग में हनुमानजी ने श्रीरामजी से अपनी माँ के दर्शन की आज्ञा माँगी :

''प्रभु ! अगर आप आज्ञा दें तो मैं माताजी के चरणों में मत्था टेक आऊँ।''

श्रीराम ने कहा : ''हनुमान ! क्या वे केवल तुम्हारी ही माता हैं ? क्या वे मेरी और लखन की माता नहीं हैं ? चलो, हम भी चलते हैं।''

पुष्पक विमान किष्किंधा से अयोध्या जाते-जाते कांचनगिरि की ओर चल पड़ा और कांचनगिरि पर्वत पर उतरा। श्रीरामजी स्वयं सबके साथ माँ अंजना के दर्शन के लिए गये।

हनुमानजी ने दौड़कर गद्‌गद कंठ एवं अश्रुपूरित नेत्रों से माँ को प्रणाम किया। वर्षों बाद पुत्र को अपने पास पाकर माँ अंजना अत्यंत हर्षित होकर हनुमान का मस्तक सहलाने लगीं।

माँ का हृदय कितना बरसता है यह बेटे को कम ही पता होता है। माता-पिता का दिल तो माता-पिता ही जानें !

माँ अंजना ने पुत्र को हृदय से लगा लिया। हनुमानजी ने माँ को अपने साथ आये लोगों का परिचय दिया कि 'माँ ! ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये माँ सीताजी हैं और ये लखन भैया हैं। ये जांबवानजी हैं... ' आदि-आदि।

भगवान श्रीराम को देखकर माँ अंजना उन्हें प्रणाम करने जा ही रही थीं कि श्रीरामजी ने कहा :

''माँ ! मैं दशरथपुत्र राम आपको प्रणाम करता हूँ।''

माँ सीता व लक्ष्मणसहित बाकी के सब लोगों ने भी उनको प्रणाम किया। माँ अंजना का हृदय भर आया। उन्होंने गद्‌गद कंठ एवं सजल नेत्रों से हनुमानजी से कहा :

''बेटा हनुमान ! आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरा माँ कहलाना सफल हुआ। मेरा दूध तूने सार्थक किया। बेटा ! लोग कहते हैं कि माँ के ऋण से बेटा कभी उऋण नहीं हो सकता लेकिन मेरे हनुमान ! तू मेरे ऋण से उऋण हो गया। तू तो मुझे माँ कहता ही है किंतु आज मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी मुझे 'माँ' कहा है ! अब मैं केवल तुम्हारी ही माँ नहीं, श्रीराम, लखन, शत्रुघ्न और भरत की भी माँ हो गयी, इन असंख्य पराक्रमी वानर-भालुओं की भी माँ हो गयी। मेरी कोख सार्थक हो गयी। पुत्र हो तो तेरे जैसा हो जिसने अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया और जिसके कारण स्वयं प्रभु ने मेरे यहाँ पधारकर मुझे कृतार्थ किया।''

हनुमानजी ने फिर से अपनी माँ के श्रीचरणों में मत्था टेका और हाथ जोड़ते हुए कहा :

''माँ ! प्रभुजी का राज्याभिषेक होनेवाला था परंतु मंथरा ने कैकेयी को उलटी सलाह दी, जिससे प्रभुजी को १४ वर्ष का वनवास एवं भरत को राजगद्दी मिली। राजगद्दी अस्वीकार करके भरतजी उसे श्रीरामजी को लौटाने के लिए आये लेकिन पिता के मनोरथ को सिद्ध करने के भाव से प्रभु अयोध्या वापस न लौटे।

माँ ! दुष्ट रावण की बहन शूर्पणखा प्रभुजी से विवाह के लिए आग्रह करने लगी किंतु प्रभुजी उसकी बातों में नहीं आये, लखनजी भी नहीं आये और लखनजी ने शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसे दे दिये। अपनी बहन के अपमान का बदला

लेने के लिए दुष्ट रावण ब्राह्मण का रूप लेकर माँ सीता को हरकर ले गया।

करुणानिधान प्रभु की आज्ञा पाकर मैं लंका गया और अशोक वाटिका में बैठी हुई माँ सीता का पता लगाया तथा उनकी खबर प्रभु को दी। फिर प्रभु ने समुद्र पर पुल बँधवाया और वानर-भालुओं को साथ लेकर राक्षसों से भयानक संग्राम किया। मेघनाद, कुंभकर्ण तथा रावण जैसे दुष्ट राक्षसों का वध किया और विभीषण को लंका का राज्य देकर प्रभु, माँ सीता एवं लखन के साथ अयोध्या पधार रहे हैं।''

अचानक माँ अंजना कोपायमान हो उठीं। उन्होंने हनुमान को धक्का मार दिया और क्रोधसहित कहा : ''हट जा, मेरी गोद से। तूने व्यर्थ ही मेरी कोख से जन्म लिया। मैंने तुझे व्यर्थ ही अपना दूध पिलाया। तूने मेरे दूध को लजाया है। तू मुझे मुँह दिखाने क्यों आया ?''

श्रीराम, लखन भैयासहित अन्य लोग भी आश्चर्यचकित हो उठे कि माँ को अचानक क्या हो गया ? वे सहसा कुपित क्यों हो उठीं ? अभी-अभी ही तो कह रही थीं कि 'मेरे पुत्र के कारण मेरी कोख पावन हो गयी... इसके कारण मुझे प्रभु के दर्शन हो गये...' और सहसा इन्हें क्या हो गया जो कहने लगीं कि 'तूने मेरा दूध लजाया है।'

हनुमानजी हाथ जोड़े चुपचाप माता की ओर देख रहे थे। **सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयो पिता...** माता सब तीर्थों की प्रतिनिधि है। माता भले बेटे को जरा रोक-टोक दे लेकिन बेटे को चाहिए कि नतमस्तक होकर माँ के कड़वे वचन भी सुन ले। हनुमानजी के जीवन से यह शिक्षा अगर आज के बेटे-बेटियाँ ले लें तो वे कितने महान हो सकते हैं !

माँ की इतनी बातें सुनते हुए भी हनुमानजी नतमस्तक हैं। वे ऐसा नहीं कहते कि 'ऐ बुढ़िया ! इतने सारे लोगों के सामने तू मेरी इज्जत को मिट्टी में मिलाती है ? मैं तो यह चला...'

आज का कोई बेटा होता तो ऐसा कर सकता था किंतु हनुमानजी को तो मैं फिर-फिर से प्रणाम करता हूँ। आज के युवान-युवतियाँ हनुमानजी से सीख ले सकें तो कितना अच्छा हो ?

मेरे जीवन में मेरे माता-पिता के आशीर्वाद और मेरे गुरु की कृपा ने क्या-क्या दिया है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। और भी कइयों के जीवन में मैंने देखा है कि जिन्होंने अपनी माता के दिल को जीता है, पिता के दिल की दुआ पायी है और सद्गुरु के हृदय से कुछ पा लिया है उनके लिए त्रिलोकी में कुछ भी पाना कठिन नहीं रहा। सद्गुरु के भक्त तथा माता-पिता के भक्त स्वर्ग के सुख को भी तुच्छ मानकर परमात्म-साक्षात्कार की योग्यता पा लेते हैं।

माँ अंजना कहे जा रही थीं : ''तुझे और तेरे बल-पराक्रम को धिक्कार है। तू मेरा पुत्र कहलाने के लायक ही नहीं है। मेरा दूध पीनेवाले पुत्र ने प्रभु को श्रम दिया ? अरे, रावण को लंकासहित समुद्र में डालने में तू समर्थ था, सारी लंका को चूर-चूर करने में तू समर्थ था और माँ सीता को आदरसहित प्रभु-चरणों में लाने में तू समर्थ था। तेरे जीवित रहते हुए भी परम प्रभु को सेतु-बंधन और राक्षसों से युद्ध करने का कष्ट उठाना पड़ा। तूने मेरा दूध लज्जित कर दिया। धिक्कार है तुझे ! अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखाना।''

हनुमानजी ने सिर झुकाते हुए कहा : ''माँ ! माँ ! तुम्हारा दूध इस बालक ने नहीं लजाया है। माँ ! मुझे लंका भेजनेवालों ने कहा था कि तुम केवल सीता की खबर लेकर आओगे और कुछ नहीं करोगे। अगर मैं इससे अधिक कुछ करता तो प्रभु का लीलाकार्य कैसे पूर्ण होता ? प्रभु के दर्शन दूसरों को कैसे मिलते ? माँ ! अगर मैं प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन करता तो तुम्हारा दूध लजा जाता। मैंने प्रभु की आज्ञा का पालन किया है माँ ! मैंने तेरा दूध नहीं लजाया है।''

तब जांबवानजी ने कहा : ''माँ ! क्षमा करें। हनुमानजी सत्य कह रहे हैं। हनुमानजी को आज्ञा थी कि सीताजी की खोज करके आओ। हम लोगों ने इनके सेवाकार्य बाँध रखे थे। अगर नहीं बाँधते तो प्रभु की दिव्य निगाहों से दैत्यों की मुक्ति कैसे होती ? प्रभु के दिव्य कार्य में अन्य वानरों को जुड़ने का अवसर कैसे मिलता ? दुष्ट रावण का उद्धार कैसे होता और प्रभु की निर्मल कीर्ति गा-गाकर लोग

अपना दिल पावन कैसे करते ? माँ ! आपका लाल निर्बल नहीं है लेकिन प्रभु की अमर गाथा का विस्तार हो और लोग उसे गा-गाकर पवित्र हों इसीलिए तुम्हारे पुत्र की सेवा की मर्यादा बँधी हुई थी।''

श्रीरामजी ने भी कहा : ''माँ ! तुम हनुमान की माँ हो और मेरी भी माँ हो। तुम्हारे इस सपूत ने तुम्हारा दूध नहीं लजाया है। माँ ! इसने तो केवल मेरी आज्ञा का पालन किया है, मर्यादा में रहते हुए सेवा की है। समुद्र में जब मैनाक पर्वत हनुमान को विश्राम देने के लिए उभर आया तब तुम्हारे ही सुत ने कहा था :

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ॥

मेरे कार्य को पूरा करने से पूर्व तो इसे विश्राम भी अच्छा नहीं लगता है। माँ ! तुम इसे क्षमा कर दो।''

रघुनाथजी के वचन सुनकर माता अंजना का क्रोध शांत हुआ। फिर माता ने कहा :

''अच्छा, मेरे पुत्र ! मेरे वत्स ! मुझे इस बात का पता नहीं था। मेरा पुत्र, मर्यादा पुरुषोत्तम का सेवक मर्यादा में रहे - यह भी उचित ही है। तूने मेरा दूध नहीं लजाया है, वत्स !''

इस बीच माँ अंजना ने देख लिया कि लक्ष्मण के चेहरे पर कुछ रेखाएँ उभर रही हैं कि 'अंजना माँ को इतना गर्व है अपने दूध पर ? क्या बात है ?' माँ अंजना भी कम न थीं। वे तुरंत लक्ष्मण के मनोभावों को ताड़ गयीं।

''लक्ष्मण ! तुम्हें लगता है कि मैं अपने दूध की अधिक सराहना कर रही हूँ, किंतु ऐसी बात नहीं है। तुम स्वयं ही देख लो।'' ऐसा कहकर माँ अंजना ने अपनी छाती को दबाकर दूध की धार सामनेवाले पर्वत पर फेंकी तो वह पर्वत दो टुकड़ों में बँट गया ! लक्ष्मण भैया देखते ही रह गये। फिर माँ ने लक्ष्मण से कहा : ''मेरा यही दूध हनुमान ने पिया है। मेरा दूध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।''

हनुमानजी ने पुनः माँ के चरणों में मत्था टेका। माँ अंजना ने आशीर्वाद देते हुए कहा : ''बेटा ! सदा प्रभु के श्रीचरणों में रहना। तेरी माँ ये जनकनंदिनी ही हैं। तू सदा निष्कपट भाव से अत्यंत श्रद्धा-भक्तिपूर्वक परम प्रभु श्रीराम एवं माँ सीताजी की सेवा करते रहना।''

कैसी रही हैं भारत की नारियाँ, जिन्होंने हनुमानजी जैसे पुत्र को जन्म ही नहीं दिया बल्कि अपनी शक्ति तथा अपने दिये गये संस्कारों पर भी उनका अटल विश्वास रहा... काश ! आज की भारतीय माताएँ उनसे प्रेरणा पाकर अपने बच्चों में हनुमानजी जैसे उत्तम संस्कार, सदाचार एवं संयम का सिंचन कर सकें तो वह दिन दूर नहीं, जिस दिन पूरे विश्व में भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति की दिव्य पताका पुनः लहरायेगी...।

*

तीन गुणों से परे हों...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

एक किसान था, उसका गन्ने का खेत था। वह जब दोपहर में भोजन करके खेत पर लौटता तो देखता कि कुछ गन्ने चोरी हो गये हैं। ऐसा कुछ दिन तक चलता रहा। एक दिन दोपहर में वह घर नहीं गया, आधे रास्ते से ही लौट आया। उसने खेत में आकर देखा कि तीन चोर गन्नों को काटकर उनका गट्ठर बना रहे हैं। उसने तीनों को रँगे हाथों पकड़ लिया। उनमें से एक ब्राह्मण, दूसरा जाट और तीसरा नाई था।

किसान अकेला था और चोर तीन थे। किसान ने सोचा कि 'यदि इन तीनों से एक साथ भिड़ूँगा तो ये लोग मुझे पटक देंगे और मेरी पिटाई करके चले जायेंगे।' अतः उसने युक्ति लड़ायी। सर्वप्रथम ब्राह्मण को प्रणाम किया और कहा : ''मेरे धन्यभाग हैं कि आप यहाँ पधारे और मेरा खेत पावन किया।''

फिर जाट से कहा : ''वाह ! भाई, वाह ! **अनपढ़ा जाट पढ़ा जैसा, पढ़ा जाट खुदा जैसा।** तुम आये तो भले आये लेकिन इस नाई के बच्चे को क्यों ले आये ? यह मेरे खेत में रोज चोरी करता है और आप लोग इसे टोकते तक नहीं ? आपका तो ये अपना ही खेत है किंतु इस नाई के बच्चे को क्यों लाये ?''

ऐसा कहकर नाई को एक-दो थप्पड़ लगा दिये और भगा दिया। नाई सोचने लगा कि 'भगवान ! इन दोनों के साथ भी कुछ जरूर हो।'

नाई रवाना हो गया। फिर किसान ने जाट की गर्दन पकड़ी और कहा : ''क्यों रे, तेरे बाप का खेत है क्या ? ये तो ब्राह्मण हैं, इनका तो हक बनता है।''

ऐसा कहकर उसको भी थप्पड़ जमा दिया और रवाना कर दिया। बाद में ब्राह्मण से कहा : ''अब आपको तो क्या मारूँ ? किंतु आपको शर्म आनी चाहिए कि ब्राह्मण होकर ऐसा कर्म करते हो।''

बुद्धिमान के लिए तो अपशब्द भी मृत्युदंड के समान है। ब्राह्मण भी चल पड़ा। इस प्रकार किसान ने युक्ति से एक-एक करके तीनों को भगा दिया।

किसान ने तो गन्ने के खेत की चोरों से रक्षा की, किंतु तुम्हारा जीवन गन्ने के खेत से ज्यादा कीमती है। उनमें भी ये तीन चोर आकर घुसे हैं - तमोगुण नाई की जगह पर, रजोगुण जाट की जगह पर और सत्त्वगुण ब्राह्मण की जगह पर... ये तीनों तुम्हारा आत्मधन चुरा रहे हैं।

मनुष्य शराब-कबाब, कलह, निद्रा आदि में अपना समय तब खराब करता है जब उसकी मति तमोगुण से आक्रांत होती है। ऐहिक भोग-विलास में वह तभी समय नष्ट करता है जब रजोगुण से घिरा होता है एवं पूजा-पाठ आदि में जब कर्ताभाव आता है तब समझो कि सत्त्वगुणरूपी ब्राह्मण ने आपका आत्मधन चुरा लिया है।

अगर कोई सात्त्विकता से भी पार चला जाय तो उसके कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग, तीनों सिद्ध हो जायेंगे। इसीलिए कहा गया है कि **नेकी कर कुएँ में फेंक।** अर्थात् अच्छे कर्म का भी अपने को कर्ता मत मान। रजो-तमोगुणजन्य कर्म तो मत कर, किंतु सात्त्विक कर्मों का भी अपने को कर्ता मत मान।

यदि तू अकर्ता होकर कर्म करेगा तो तीनों गुणों से पार परम तत्त्व में स्थिति पाने में सफल हो जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने अपना कितना ऊँचा अनुभव बताया है :

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

'हे अर्जुन ! वेद उपर्युक्त प्रकार से तीनों गुणों के कार्यरूप समस्त भोगों और उनके साधनों का प्रतिपादन करनेवाले हैं, इसलिए तू उन भोगों और उनके साधनों में आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु परमात्मा में स्थित योग-क्षेम को न चाहनेवाला और स्वाधीन अन्तःकरणवाला हो।'

(गीता : २.४५)

कल्याण का मार्ग

❋ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ❋

१. 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्या बोध दिया है ? भगवान ने अर्जुन से स्पष्ट कहा है कि 'प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।' वेद मुक्ति नहीं देते, वेद तो कहते हैं कि मनुष्य बनो। मनुष्यत्व को धारण करो। यदि वेद पढ़कर मनुष्यता को धारण नहीं किया गया तो फिर मुक्ति कहाँ ?

२. आपका लक्ष्य क्या है ? आपका लक्ष्य है योग अर्थात् अपने स्वरूप में लीन होना। किंतु तुम निर्लज्ज बनकर उसे भुला बैठे हो। याद रखो कि आपको हिसाब देना होगा।

यम जब लेखा माँगे, क्या मुख लेकर जायेगा ?
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साध संग तर जायेगा।

अतः आज ही अपने मन में दृढ़ निश्चय करो कि सत्पुरुषों के संग एवं शास्त्रों के अध्ययन से, विवेक-वैराग्य का आधार लेकर, किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महाराज की शरण में जाकर, अपने कर्तव्य का पालन करके इसी जीवन में मोक्ष को पायेंगे।

३. तुम लीलाशाह के पास क्यों जाते हो ? इसलिए कि उनके वचन सुनेंगे। किंतु सुनने के लिए क्यों आते हो ? आनंद पाने के लिए। नदी सदैव दौड़ती रहती है। क्यों ? समुद्र में मिलने के लिए। वह दिन-रात दौड़ती रहती है। ऐसे ही तुम भी दिन-रात आनंद की प्राप्ति के लिए दौड़ते रहते हो।

४. सब प्राणियों के जीवन का उद्देश्य सुख, शांति एवं वास्तविक आनंद की प्राप्ति ही है। जैसे नदियाँ सदैव समुद्र में मिलने के लिए भागती रहती हैं, वैसे ही सब मनुष्य नित्य व अक्षुण्ण आनंद में स्थित होने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा है आनंद की प्राप्ति। अतः यदि आनंद चाहते हो तो पापों से बचो। पाप और कमजोरी चली जाय तो दुःख नहीं रहेगा।

५. हम नित्य सुख की प्राप्ति तथा सब दुःखों का नाश चाहते हैं। यह तुम जानते हो अथवा नहीं किंतु है ऐसा ही। हम खाते-पीते हैं, सिनेमा देखते हैं, वस्त्र पहनते हैं, घूमते-फिरते हैं। ये सब इसलिए करते हैं कि हमें सुख मिले। किंतु वह सुख जो नाश न हो और फिर दुःख मिले ही नहीं, उसके लिए बाह्य पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को समझना आवश्यक है। ये बाह्य पदार्थ, जिनका अपना अस्तित्व है ही नहीं, उनकी प्रतीति केवल तुम्हारे कारण ही है। वास्तव में तुम्हारे सिवा कुछ है ही नहीं।

६. मनुष्यों में उत्तम वह है जिसने शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति की है अर्थात् जिसका शरीर निरोग है, मन पवित्र है और जिसने अपने-आपको अर्थात् आत्मा को जाना है।

७. मनुष्य-योनि को पशुओं तथा देवताओं की योनियों से भी श्रेष्ठ कहा गया है। यह इसलिए है कि मनुष्य-जन्म, भोगक्षेत्र तथा कर्मक्षेत्र दोनों है। हम गत जन्मों के पाप-पुण्यों के फल सुख-दुःख भोगते हैं तथा भविष्य अच्छा बनाने के लिए अच्छे कर्म करने में स्वतंत्र हैं। यह बात पशुओं और देवताओं के लिए नहीं है। वे योनियाँ तो भोगक्षेत्र ही हैं। उनमें तो पाप-पुण्य का फल सुख-दुःख ही भोगना पड़ता है।

८. विकार मनुष्य के शत्रु हैं। जो बुरे संग तथा विकारों का गुलाम है, वह अपना भला नहीं कर सकेगा और जो अपना भला नहीं कर सकता, वह दूसरे का भला भी क्या करेगा ?

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

(श्रीरामचरित. अयो. कां. : ९२.२,३)

९. हमें सुन्दर गुण धारण कर सुन्दर बनना चाहिए। चन्द्र के समान शीतल प्रकाशवाला बनना चाहिए तथा अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। हमें पहले अपने उद्देश्य की जानकारी होनी चाहिए। कोई कहीं जा रहा हो, किंतु उसे यह जानकारी न हो कि कहाँ जाना है तो तुम उस पर हँसोगे। ऐसे ही वे लोग हैं, जो अपने जीवन के उद्देश्य को नहीं जानते।

१०. सुनना है समझने के लिए, समझना है आचरण के लिए। किंतु यदि तुम्हारा मन ही स्थिर नहीं है, तब तुम सुनते हुए भी समझोगे क्या ? जब तक मन को स्थिर न करोगे, उसको वश में न करोगे, तब तक तुम्हारा जो लक्ष्य है आनंद की प्राप्ति वह प्राप्त न होगा।

[गतांक से आगे]

श्री उड़िया बाबाजी

परदुःख-निवारण का प्रयत्न :

आर्त्तत्राणजी 'यथानाम-तथागुण' थे। आरम्भ से ही आपका चित्त बहुत कोमल था। अपने जीवन में आपने शायद ही कभी किसी पर क्रोध किया होगा। कई बार तो दूसरों को क्रोध करते देखकर आपके चित्त को इतना आघात पहुँचता कि आप घंटों मूच्छित पड़े रहते। काफी समय बाद जब आप अध्ययन समाप्त करके अपने घर लौटे तो सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर आप भी अपनी पैतृक वृत्ति करने लगे।

कुछ समय बाद वहाँ बड़ा भयंकार अकाल पड़ा। अन्न-पानी की खोज में इधर-उधर भटकते लोगों को भूख-प्यास से तड़पते व मरते देखकर आपको बहुत दुःख हुआ और आप उनकी पीड़ा दूर करने का उपाय सोचने लगे। इतना द्रव्य तो आपके पास था नहीं जो सभीकी भूख-प्यास को शांत कर सकते। अतः आपने कोई ऐसा अनुष्ठान करने का निश्चय किया जिससे द्रौपदी की बटलोई के समान कोई पात्र या रसायन प्राप्त किया जा सके। (वनवास के समय सूर्य ने द्रौपदी को एक ऐसी बटलोई दी थी जिसके द्वारा अन्न सिद्ध करके बाँटने पर वह तब तक समाप्त नहीं होता था जब तक द्रौपदी स्वयं भोजन न कर ले।)

अतः चैत्र शु. ५ सं. १९५१ की रात्रि को आप किसीसे बिना कुछ कहे केवल धोती, लोटा और ११ रुपये लेकर आर्तरक्षण के साधन की खोज में घर से निकल पड़े और गोहाटी जा पहुँचे। उस समय आपके पास केवल ढाई रुपये बचे थे। दैवयोग से उन्हीं दिनों वहाँ अनुष्ठान करने के लिए एक बंगाली तांत्रिक भी आये हुए थे। उनसे आपकी मित्रता हो गयी और उन्हींकी सलाह से आपने माँ वनदुर्गा के मंत्र का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। अनुष्ठान सुचारु रूप से चलने लगा। उसमें कुछ सफलता के चिह्न भी प्रतीत हुए। जप के समय वशिष्ठादि नित्य सिद्धों के दर्शन होते थे। कई बार स्वप्न में भगवती वनदुर्गा के दर्शन भी हुए। किंतु इसी समय आपके चित्त में ऐसे विचार आने लगे कि 'इस अनुष्ठान से क्या होगा ? एक पात्र मिल भी गया तो क्या हम उससे संसार के सभी प्राणियों की क्षुधा निवृत्त कर पायेंगे ? नहीं, नहीं... यह केवल हमारे मन की भ्रांति ही है। संसार तो चलता ही रहता है। हमारे पास से अन्न लेने के लिए भी भला कितने लोग आयेंगे ? और हम भी क्या हमेशा के लिए जीवित रहेंगे ? नहीं... इसलिए इस संकल्प को छोड़ना ही अच्छा है।' इन्हीं दिनों आपने पूर्णगिरि नाम के एक महात्मा से भगवान शंकराचार्य विरचित विवेक-चूड़ामणि भी सुनी, जिसके चिन्तन-मनन ने आपके विचार को बदलने में और भी सहायता की। अतः आपने वह अनुष्ठान बीच में ही छोड़ दिया।

परंतु सिद्धि प्राप्त करने की ओर से आपका चित्त अभी पूर्णतया उदासीन नहीं हुआ था। अतः आप गोहाटी से काशी पहुँचे। इस प्रांत में आपकी यह प्रथम यात्रा थी। यहाँ न तो कोई आपका परिचित था और न आपके पास पैसे ही थे। यहाँ की भाषा भी आप नहीं समझते थे और न ही अपनी बात किसीको समझा सकते थे। किंतु आपको विश्वास था कि यह माँ अन्नपूर्णा की नगरी है, वह आपको भूखा नहीं रखेगी। अतः आप माँ अन्नपूर्णा और भगवान विश्वनाथ के दर्शन कर मणिकर्णिका घाट पर एक खाली गुफा में जा बैठे। आपने निश्चय किया कि 'मैं किसीसे कुछ भी नहीं माँगूँगा।' आपको उसी गुफा में तीन दिन और तीन रात बीत गये। शौच और लघुशंका के लिए भी आप वहाँ से नहीं उठे। आखिर चौथे दिन आप स्नान करने के लिए गुफा से बाहर आये। उसी समय वहाँ एक स्त्री आयी। उसने आपको पंचामृत-पान कराया। फिर आप भगवान विश्वनाथ के दर्शन के लिए गये तो वहाँ एक

ब्राह्मण ने आपको अनार दिया । इस प्रकार तीन दिन के व्रत का पारण करके आप पुनः उसी गुफा में आ गये। यहाँ रात्रि में आपको स्वप्न आया कि कोई महात्मा आपसे वैद्यनाथ धाम जाने के लिए कह रहे हैं। अतः एक काशीवासी बंगाली से टिकट कटवाकर आप वैद्यनाथ धाम चले गये।

वहाँ अनेकों लोग अपनी कामना-सिद्धि के लिए केवल पंचामृत-पान करते हुए धरना दिया करते हैं । आपने भी देवी सरस्वती की सिद्धि के लिए धरना देना आरम्भ कर दिया। परंतु पाँचवें ही दिन आपकी विवेकवती बुद्धि ने आपको धरने से भी विचलित कर दिया और आप सोचने लगे कि 'यदि देवी सरस्वती सिद्ध भी हो गयीं तो उससे क्या होगा ? आखिर कालिदास जैसे बड़े-बड़े विद्वान भी तो काल के गाल में चले गये ! इसलिए विद्वत्ता पाने के लिए तप करना व्यर्थ है।' यह सोचकर आपने तप करना छोड़ दिया और जगन्नाथपुरी में अपने घर वापस लौट आये।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य :

आपके घर लौट आने से सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। परंतु आप तो अधिक दिनों तक घर में रहनेवाले थे नहीं । इस समय आपकी अवस्था २० वर्ष से अधिक थी।

एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने पहले ही आपके घरवालों को बताया था कि आप ३०-३२ वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहेंगे। इस कारण घरवालों ने आपका विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। जन्म से ही आपकी भोगों में रुचि नहीं थी और अब तक आपने अपना जीवन निरालम्ब रहकर ही व्यतीत किया था। इसीलिए घर में भी आप किसीके मोहबंधन में नहीं बँधे थे। आप घर तो लौटे लेकिन वहाँ ज्यादा दिन तक रुक नहीं पाये और पुरी धाम में ही श्री गोवर्धन मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री मधुसूदन तीर्थ से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर आप आर्त्तत्राण से ब्रह्मचारी वासुदेवस्वरूप हो गये । इन दिनों आपकी विशेष इच्छा यही थी कि किसी प्रकार ऊर्ध्वरिता ब्रह्मचारी बना जाय। आप सोचा करते थे कि 'मेरी ऐसी स्थिति हो कि मैं युवती स्त्रियों की गोद में भी निर्दोष बालक के समान खेलूँ । स्त्रियों का अधिक-से-अधिक सम्पर्क होने पर भी मेरे मन में किसी प्रकार का विकार न आये।' इसके अतिरिक्त आपकी दूसरी इच्छा यह थी कि 'मेरी सर्वत्र निर्विरोध गति हो । लोक-लोकान्तर और राजमहलों में भी मैं बिना रोक-टोक जा सकूँ। रोक-टोक तो तभी होती है जब मनुष्य के चित्त में किसी प्रकार का कोई विकार होता है। बालक को कोई नहीं रोकता। अतः यदि मेरा चित्त निर्विकार होगा तो मुझे कोई क्यों रोकेगा ?' इन्हीं आकांक्षाओं से प्रेरित होकर आपने वीर्य पर विजय प्राप्त करने का अर्थात् अपने ब्रह्मचर्य को सिद्ध करने का निश्चय किया । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप मठ में आने-जानेवाले साधुओं से मिलते रहे।

इन्हीं दिनों आपको किसी सिद्ध गुरु को खोजने की धुन भी सवार हुई। इसके लिए आप मठ छोड़कर बंगाल के कई जिलों में घूमते रहे । परंतु कहीं भी आपको ऐसे महात्मा न मिले जिन्हें आप आत्म-समर्पण कर देते। अन्त में आप बड़पेटा पहुँचे। इस शहर के पास ही एक शिवालय था जिसके महंत एक ब्रह्मचारी थे, जो इस समय बहुत बीमार थे । आपने उनकी खूब सेवा-शुश्रूषा की, परंतु ८-१० दिनों में उनका देहान्त हो गया । आपकी सेवा से सन्तुष्ट होकर उन्होंने अपने प्राण-त्याग के पहले आपको ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अतः उनके पश्चात् आप वहाँ के महंत बने । वहाँ रहकर आपने 'शतचण्डी' का अनुष्ठान किया । उसके उपलक्ष्य में नवरात्रि में हवन और ब्रह्मभोज हुआ । इस उत्सव की समाप्ति पर आपको ऐसा अनुभव होने लगा मानों, साक्षात् माँ दुर्गा आपके सामने खड़ी हैं। इस समय आपको वाक्सिद्धि भी प्राप्त हो गयी । आप जिससे जो बात कहते वही सत्य हो जाती थी। आपको लोगों के बहुत से छिपे हुए पाप-पुण्य भी मालूम हो जाते थे। ऐसे चमत्कार देखकर आपके पास बहुत लोग आने लगे जिससे वहाँ भेंट की सामग्रियों और रुपयों का ढेर लगने लगा । उनका उपयोग नित्यप्रति हजारों लोगों के लिए भण्डारों का आयोजन करने में होने लगा। आप प्रश्न करनेवाले की सूरत देखकर ही उसके बारे में सब बातें बता देते थे। १८ दिनों तक यही क्रम जारी रहा । अन्त में विक्षेप अधिक बढ़ जाने से आपके चित्त में कुछ पश्चात्ताप हुआ। तब यह सिद्धि स्वयं

ही निवृत्त हो गयी । फिर न तो वैसा अनुभव रहा और न कुछ कहने-सुनने की इच्छा ही रही । एक दिन आपने इस प्रपंच से निकलने का निश्चय किया और खर्चे के लिए मात्र १५ रुपये लेकर चुपचाप वहाँ से रेल द्वारा गोहाटी चले आये ।

अब आप आसाम और पूर्वी बंगाल में घूम-घूमकर फिर से किसी सिद्धयोगी की खोज करने लगे । किंतु आपको ऐसे कोई योगीराज न मिले जिन्हें पाकर आपकी आध्यात्मिक प्यास शांत होती । अन्त में इसी उद्देश्य से आपने सारे भारतवर्ष में घूमने का निश्चय किया ।

एक बार आप कलकत्ता से रामेश्वर की ओर जा रहे थे । मार्ग में बालेश्वर जिले के किसी गाँव के एक बगीचे में रात्रि-विश्राम के लिए ठहरे । उसी रात्रि में अकस्मात् बगीचे के सामनेवाले मकान में आग लग गयी । उसमें से और सब लोग तो बाहर निकल आये, किंतु एक नव-विवाहिता वधू बाहर नहीं निकल पायी और आग की लपटों से घिर गयी । मकान में सभी ओर आग लगी हुई थी, अतः उसके बचने की कोई आशा नहीं थी । आपसे उसका यह संकट देखा न गया । अतः आग की परवाह किये बिना आप उस घर में घुस गये और नव-विवाहिता वधू को उठाकर बाहर ले आये । परंतु इस प्रकार एक अबला की प्राण-रक्षा करने पर भी आपको स्त्री-स्पर्श के कारण बहुत ग्लानि हुई और उसके प्रायश्चित के लिए आपने २-३ दिन अन्न-ग्रहण नहीं किया ।

अपने इस भ्रमण के दौरान आप कई महात्माओं से मिले । आखिर सन् १९०८ में आप पुनः कलकत्ता लौट आये । इस समय बंग-भंग के कारण स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था । आपको दीन-दुःखियों के प्रति सदा से ही सहानुभूति रही है । अतः आप भी आन्दोलनकारियों के साथ मिल गये । एक-दो बार आपकी गिरफ्तारी भी हुई, किंतु अपराध सिद्ध न होने के कारण आपको छोड़ दिया गया । उस समय अनेकों नवयुवकों को फाँसी लगते देखकर आपको बड़ा खेद होता था परंतु आपके पास कोई ऐसी शक्ति तो थी नहीं, जिससे उनके दुःख दूर कर सकते । आखिर एक महात्मा के समझाने पर आपने यह प्रवृत्ति छोड़ दी और संन्यास लेने का निश्चय कर लिया । ❋ (क्रमशः)

सुखी जीवन के लिए चार बातें

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

जो व्यक्ति मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा - इन चार बातों के अनुसार जीवन में व्यवहार करेगा, वह सुखी और शांत रहेगा ।

श्रेष्ठजनों से, अपने से ऊँचे पुरुषों से, शुद्धात्मा-पवित्रात्मा व्यक्तियों से प्रयत्नपूर्वक सम्बन्ध जोड़ें । चाहे मित्रता का सम्बन्ध जोड़ें, चाहे कोई और जोड़ें, चाहे गुरु का जोड़ें किंतु अपने से श्रेष्ठ के साथ सम्बन्ध जोड़ना, यह मैत्री है ।

पुत्र-परिवार जो अपने अधीन हैं, जो दीन-दुःखी हैं, अपने से आध्यात्मिकता में पीछे हैं, उनके प्रति करुणा रखकर व्यवहार किया जाता है । उनसे गलतियाँ होंगी, उनका अपना स्वार्थ, अपनी आवश्यकताएँ होंगी फिर भी वे अपने से छोटे हैं, इसलिए उनके प्रति करुणा रखकर उन्हें ऊपर उठायें । ऊपर उठाने के लिए प्यार-पुचकार व डाँट-फटकार भी करुणा का ही रूप है ।

तीसरे वे हैं जिनसे आपका सम्बन्ध नहीं है किंतु वे अच्छा काम करते हैं । उन्हें 'भाई ! अच्छा किया । यह काम हम तो नहीं कर पाये । आपने कर दिया, बहुत अच्छा है ।' ऐसा कहकर उनका अनुमोदन करें तो अच्छाई बढ़ाने का पुण्य आपको भी मिलेगा । यह है मुदिता ।

चौथे होते हैं निपट निराले । जो न तो स्वयं अच्छा काम करेंगे न आपकी बात मानेंगे । उनको ठीक करने का ठेका आप लेंगे तो आप परेशान हो जायेंगे । ऐसे लोग समझो, आपके लिए पैदा ही नहीं हुए । आप उनकी उपेक्षा कर दें ।

घर, ऑफिस या दुकान में ही मान लें, दो, चार, दस, सौ या हजार सदस्य हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे ही होंगे, जो आपकी बात सुनी-अनसुनी करते रहेंगे, टाल देंगे। उनसे सावधान होकर आप धीरे-धीरे उनकी उपेक्षा कर दीजिये। उनसे लड़-झगड़कर अपना समय खराब न करें। जैसे - इंदिरा गाँधी की गुरु आनंदमयी माँ करती थीं। उनके आश्रम में कुछ लोग उलटा-सीधा करते तो वे पहले एक-दो बार उन्हें संकेत करके समझातीं, किंतु यदि वे लोग सुना-अनसुना कर देते तो बाद में वे उनकी तरफ ध्यान ही नहीं देती थीं। जैसे - कुत्ता रोटी का टुकड़ा खाता है तो खाये, आपने उसकी उपेक्षा कर दी। जो महापुरुषों द्वारा उपेक्षित हो जाते हैं, उन्हें फिर शांति और आनंद से हाथ धोने पड़ते हैं।

जो नहीं मानें उनकी उपेक्षा, जो बराबरी के हैं उनसे मुदिता, जो छोटे हैं उन पर करुणा और जो श्रेष्ठ हैं उनसे मैत्री करें।

गीता प्रश्नोत्तरी

२१. श्रीकृष्ण के शंख का क्या नाम था ?
२२. पाण्डव-सेना की सर्वप्रथम व्यूहरचना किसने की ?
२३. अर्जुन के घोड़ों का रंग कौन-सा था ?
२४. मानव-देह में कितने द्वार होते हैं ?
२५. अर्जुन के धनुष का क्या नाम था ?
२६. युधिष्ठिर के शंख का क्या नाम था ?
२७. गीता के तीसरे अध्याय का मुख्य विषय क्या है ?
२८. कर्म की उत्पत्ति किससे होती है ?
२९. मनुष्य पाप का आचरण किससे प्रेरित होकर करता है ?
३०. योगी किस निमित्त से कर्म करते हैं ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर : (११) अस्थायी (१२) नहीं (१३) धर्म के पक्ष में (१४) मोहवश (१५) बंधनमुक्ति (१६) सम्मोह से (१७) ७०० (१८) तीन प्रकार की (१९) परमात्मा का (२०) धृतराष्ट्र का।

एकादशी माहात्म्य

[वरूथिनी एकादशी : २७ अप्रैल २००३]

युधिष्ठिर ने पूछा : हे वासुदेव ! वैशाख मास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ? कृपया उसकी महिमा बताइये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! वैशाख (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार चैत्र) कृष्णपक्ष की एकादशी 'वरूथिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह इस लोक और परलोक में भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी' के व्रत से सदा सुख की प्राप्ति और पाप की हानि होती है। 'वरूथिनी' के व्रत से ही मान्धाता तथा धुन्धुमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए हैं। जो फल दस हजार वर्षों तक तपस्या करने के बाद मनुष्य को प्राप्त होता है, वही फल इस 'वरूथिनी एकादशी' का व्रत रखनेमात्र से प्राप्त हो जाता है। नृपश्रेष्ठ ! घोड़े के दान से हाथी का दान श्रेष्ठ है। भूमिदान उससे भी बड़ा है। भूमिदान से भी अधिक महत्त्व तिलदान का है। तिलदान से बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदान से बढ़कर अन्नदान है, क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्यों को अन्न से ही तृप्ति होती है। विद्वान पुरुषों ने कन्यादान को भी इस दान के ही समान बताया है। कन्यादान के तुल्य ही गाय का दान है, यह साक्षात् भगवान का कथन है। इन सब दानों से भी बड़ा विद्यादान है। मनुष्य 'वरूथिनी एकादशी' का व्रत करके विद्यादान का भी फल प्राप्त कर लेता है। जो लोग पाप से मोहित होकर कन्या के धन से जीविका चलाते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर यातनामय

नरक में जाते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके कन्या के धन से बचना चाहिए, उसे अपने काम में नहीं लाना चाहिए। जो अपनी शक्ति के अनुसार अपनी कन्या को आभूषणों से विभूषित करके पवित्र भाव से कन्या का दान करता है, उसके पुण्य की संख्या बताने में चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं। 'वरूथिनी एकादशी' करके भी मनुष्य उसीके समान फल प्राप्त करता है।

राजन् ! रात को जागरण करके जो भगवान मधुसूदन का पूजन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो परम गति को प्राप्त होते हैं। अतः पापभीरु मनुष्यों को पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशी का व्रत करना चाहिए। यमराज से डरनेवाला मनुष्य अवश्य 'वरूथिनी' का व्रत करे। राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है और मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है।

[सुज्ञ पाठक इसको पढ़ें-सुनें और गौदान का पुण्यलाभ प्राप्त करें।]

*

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यक्रमांक / रसीदक्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में यह नहीं लिखा होगा, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२६वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अप्रैल २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

अभिभावकों के कर्तव्य

भारत में आजकल बालकों को जो शिक्षा दी जा रही है, वह भारतीय संस्कृति के लिए तो घातक है ही, साथ ही उन बालकों के लिए भी अत्यंत हानिकर है क्योंकि वह उनके जीवन को असंयमी, रोगग्रस्त एवं दुःखी बनाकर अंत में मानव-जीवन के चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति से वंचित रखनेवाली है। अधिकांश बुद्धिमान सज्जन बहुत विचार-विनिमय के बाद इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली हमारे बालकों के लिए सर्वथा अनुपयोगी है।

त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियों का जो अनुभव था, वह इस लोक और परलोक में सब प्रकार से कल्याणकारक है। पर आज हम लोग उनके अनुभव के लाभ से वंचित हो रहे हैं, क्योंकि उन महानुभावों की जो भी शिक्षा है, वह शास्त्रों में है तथा व्यर्थ के कार्यों में समय खो देने के कारण समयाभाव से और श्रद्धा, भक्ति एवं रुचि की कमी से हम शास्त्र पढ़ते नहीं, अतः उनके ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। हमारी संतान तो इस ज्ञान से सर्वथा ही शून्य है। इसलिए भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखनेवालों तथा बालकों के सच्चे शुभचिन्तकों को ऐसी शिक्षा-पद्धति बनाने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे बालक-बालिकाओं में वर्णाश्रम धर्म, ईश्वरभक्ति, माता-पिता की सेवा, देवपूजा, श्राद्ध, एकपत्नीव्रत, सतीत्व आदि में श्रद्धा उत्पन्न हो। साथ ही अभिभावकों को स्वयं भी इनको जीवन में लाना चाहिए।

जो अभिभावक स्वयं सद्गुण-सदाचार का पालन नहीं करते, उनका बच्चों पर असर नहीं हो सकता। ऐसी उत्तम शिक्षा के लिए अभिभावकों

को गीता, भागवत, रामचरितमानस, वाल्मीकीय और अध्यात्म रामायण, महाभारत, जैमिनीय अश्वमेध, पद्मपुराण, मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रंथों का स्वयं भी अध्ययन करना चाहिए और बालक-बालिकाओं को भी कराना चाहिए। यदि प्रतिदिन सब मिलकर अपने घर में, चाहे एक घंटा या आधा घंटा ही सही, इन ग्रंथों का क्रम से अध्ययन करें तो बालकों को घर बैठे ही शास्त्रज्ञान हो सकता है। इन शास्त्रों के अध्ययन से ऋषि, मुनि, महात्मा, शास्त्र, ईश्वर और परलोक में बालकों का श्रद्धा-विश्वास बढ़कर उनका स्वाभाविक उत्थान हो सकता है तथा बालक आदर्श बन सकते हैं। बालकों की उन्नति से ही कुटुम्ब, जाति और राष्ट्र की भावी संतानों की उन्नति हो सकती है। अतः बालकों के शिक्षण और चरित्र पर अभिभावकों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

- *जयदयाल गोयन्दका*

****

हमारे देश का भविष्य हमारी युवा पीढ़ी पर निर्भर है किंतु उचित मार्गदर्शन के अभाव में वह आज गुमराह हो रही है।

पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के दुष्प्रभाव से उसके यौवन का ह्रास होता जा रहा है। विदेशी चैनल, चलचित्र, अश्लील साहित्य आदि प्रचार माध्यमों के द्वारा युवक-युवतियों को गुमराह किया जा रहा है। विभिन्न सामयिकों और समाचार-पत्रों में भी तथाकथित पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित मनोचिकित्सक और 'सेक्सोलॉजिस्ट' युवा छात्र-छात्राओं को चरित्र, संयम और नैतिकता से भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं।

अतः हमारे युवाधन छात्र-छात्राओं को ब्रह्मचर्य में प्रशिक्षित करने के लिए उन्हें यौन-स्वास्थ्य, आरोग्यशास्त्र, दीर्घायु-प्राप्ति के उपाय तथा कामवासना नियंत्रित करने की विधि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान करना हम सबका अनिवार्य कर्तव्य है। इसकी अवहेलना करना हमारे देश व समाज के हित में नहीं है। यौवन सुरक्षा से ही सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।

[आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'यौवन सुरक्षा' से]

****

विद्या क्या है ?

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

विद्या ददाति विनयं... विद्या से विनय प्राप्त होती है। यदि विद्या पाकर भी अहंकार बना रहा तो ऐसी विद्या किस काम की ? ऐसी विद्या न तो स्वयं का कल्याण करती है न औरों के ही काम आती है।

एक समय जयपुर में राजा माधवसिंह का राज्य था। राज्य-सिंहासन पर बैठने से पूर्व माधवसिंह एक सामान्य जागीरदार का पुत्र था। बाल्यकाल से ही वह बड़ा ऊधमी और शैतान था। पढ़ने-लिखने में उसकी रुचि न थी।

संसारचन्द्र उसके बाल्यकाल के गुरु थे। यदि माधवसिंह को कोई पाठ न आता तो वे उसे खूब मारते। सच्चे गुरु शिष्य का अज्ञान कैसे सहन कर लेते ? बड़ा होने पर बचपन का वही ऊधमी माधवसिंह जयपुर का राजा बना।

एक दिन माधवसिंह बड़ा दरबार लगाकर बैठा था। तब किसीने राज-दरबार में आकर संसारचन्द्र की शिकायत की जबकि वे बिल्कुल निर्दोष थे।

माधवसिंह ने संसारचन्द्र को राज-दरबार में उपस्थित करने का आदेश दिया। संसारचन्द्र निर्भयतापूर्वक राज-दरबार में आये।

माधवसिंह : ''गुरुजी ! आपको याद होगा कि किसी जमाने में आप मेरे गुरु थे और मैं आपका शिष्य।''

संसारचन्द्र याद करने लगे तो माधवसिंह ने पुनः कहा : ''जब मुझे कोई पाठ नहीं आता था तब आप मुझे डंडे से मारते थे। आप मेरे पीछे पड़ जाते थे।''

संसारचन्द्र के प्राण कंठ तक आ गये। उन्होंने सोचा कि 'अब माधवसिंह जरूर मुझे फाँसी पर लटकायेगा। इसकी क्रूरता तो प्रख्यात है।' किंतु तभी स्वस्थ होकर संसारचन्द्र ने कहा : ''महाराज! सत्ता का नशा मनुष्य को खत्म कर देता है। यदि मुझे पहले से ही इस बात का पता होता कि आप जयपुर नरेश बननेवाले हैं तो मैंने आपको उससे भी ज्यादा कठोर सजाएँ दी होतीं। आपको राजा की योग्यता दिलाने के लिए मैंने ज्यादा दंड दिया होता। यदि मैं ऐसा कर पाता तो आज आप जिस विद्या को लज्जित कर रहे हैं, उसकी जगह उसे प्रकाशित करते।''

सारी सभा मन-ही-मन संसारचन्द्र की निर्भयता की प्रशंसा करने लगी। माधवसिंह को भी अपनी क्रूरता के लिए पश्चात्ताप होने लगा। उन्होंने गुरु संसारचन्द्र से क्षमा माँगी और उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया।

जो विद्या अहं को जगाकर विकृति पैदा करे वह विद्या ही नहीं है। विद्या तो मनुष्य के व्यक्तित्व को निखारने का काम करती है और ऐसी विद्या प्राप्त होती है संत-महापुरुषों के चरणों में...

धन्य हैं स्पष्टवक्ता संसारचन्द्र और धन्य है गुरु को हितैषी मानकर माधवसिंह का राजमद छोड़ना, अपनी चतुराई चूल्हे में डालना!

राजसत्ता का मद छोड़कर सद्गुरु का आदर करनेवाले छत्रपति शिवाजी की नाईं इस विवेकी ने भी अपनी उत्तम सुझ-बूझ का परिचय दिया।

क्या आप लोग भी अपने हितैषियों की कठोरता का सदुपयोग करेंगे? या बचाव की बकवास करके अवहेलना करेंगे?

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

संत कँवरराम

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

संतों की बात ही निराली होती है। वे जहाँ जाते हैं, लोगों का मंगल ही करते हैं। सिंध प्रांत में कई संत हो गये। इन्हींमें से एक थे - संत कँवरराम।

संत कँवरराम के पास लोग सच्ची शांति पाने के लिए आते थे। कई माताएँ अपने बच्चों को आशीर्वाद दिलाने के लिए संत की गोद में रख देतीं। संत कँवरराम भी बच्चों को प्रेम से लोरी सुनाते थे।

एक बार एक स्त्री ने अपने मृत बालक को संत कँवरराम की गोद में रख दिया कि शायद वे मेरे बालक को जीवित कर दें।

बालक को लोरी देकर हँसाना, उस पर प्रेमपूर्ण दृष्टिपात करना, यह संत कँवरराम का स्वभाव था। उस बालक को लोरी देकर उन्होंने देखा कि यह तो तनिक भी हिल नहीं रहा है। उसे ठीक से निहारने पर उन्हें पता चला कि उसकी धड़कनें रुकी हुई हैं, वह मरा हुआ है।

संत कँवरराम ने भगवान को विनती करते हुए कहा : ''हे प्रभु! मेरे साथ आज यह क्या दगा हो गया? मेरे नाम पर कलंक लगेगा उसकी मुझे परवाह नहीं है, परंतु लोग कहेंगे कि संत के हाथों में बालक रखा और मर गया। इससे तो भक्ति के नाम पर लांछन लगेगा। हे प्रभु! आज के बाद मैं कभी लोरी नहीं दूँगा। बस, इस बार माफ कर दो और इस बच्चे को जीवित कर दो। मेरे नाथ! यह बालक जब तक जिंदा नहीं होगा, तब तक मैं इसे नीचे नहीं रखूँगा। तेरी कृपा होगी तो लाज बच जायेगी। मैं तेरी शरण आया हूँ।''

जिसका चित्त जितना अंतर्मुख, शांत और

स्थिर होता है, उसमें आत्मिक सामर्थ्य उतना ही अधिक होता है, उसके केन्द्र भी उतने अधिक विकसित होते हैं। इस तरह जितना व्यक्तित्व खिलता है, उतना ही वह अंतर्यामी परमात्मा के करीब आता है। फिर उसके जीवन में छोटे-मोटे चमत्कार भी होते रहते हैं।

संत कँवरराम ने अपना अहं परमात्मा के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। प्रार्थना करते-करते उनकी ऊपर के केन्द्रों में गति हुई और मृत बालक में चेतना का संचार हुआ। बालक ने आँखें खोलीं। संत कँवरराम ने उस स्त्री को बालक वापस कर दिया। वह खुश हो गयी और संत के चरणों में गिर पड़ी। परंतु उस दिन के बाद संत कँवरराम ने कभी किसी बच्चे को लोरी नहीं दी।

अपने निजी स्वार्थ के लिए संत के साथ छल-कपट करने पर संत का तो कुछ नहीं बिगड़ता, परंतु इससे समाज का ही भारी नुकसान होता है। इसलिए कभी-भी भगवान के प्यारे संतों के साथ ऐसा खेल नहीं खेलना चाहिए, उनके नाजुक हृदय को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए। वे अपना सारा जीवन लोक-कल्याण में हँसते-हँसते खर्च कर डालते हैं। अगर हम उन्हें कुछ दे नहीं सकते तो कम-से-कम दगा तो नहीं देना चाहिए। ईमानदारी ही उच्च जीवन का मुख्य लक्षण है।

गुरुकृपा

जैसे शरीर के लिए खिलाने-पिलाने तथा पलंग पर सुलाने आदि की व्यावहारिक क्रियाएँ आवश्यक हैं, उसी प्रकार अपने व्यावहारिक अंतःकरण को व्यावहारिक परमात्मा से जोड़ो तभी उसकी शुद्धि होगी। परमात्मा का व्यावहारिक रूप गुरुदेव ही हैं।

संसार में संसारी दुष्ट इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले तो बहुत हैं परंतु हमारे दिल को संसारी इच्छाओं से छुड़ानेवाले एक गुरुदेव ही हैं।

- ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री अखंडानंदजी सरस्वती

श्रीरामजी द्वारा वानर-भोज

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक बार श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी से कहा : ''हनुमान ! राज्याभिषेक के बाद सबको यथायोग्य सम्मान तो मिला, किंतु अभी भी मेरे मन में एक इच्छा है कि इन वानरों को पंगत में बिठाकर भोजन करवाऊँ।''

हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा : ''प्रभु ! इन वानरों को मैं खूब जानता हूँ, इन्हें तो वृक्षों पर ही कूदने दीजिये।''

''परंतु, हनुमान ! मेरी इच्छा है कि इन्हें मानवों की तरह भोजन कराऊँ।''

भगवान की इच्छा जानकर हनुमानजी ने कहा : ''प्रभु ! जो आपकी आज्ञा।''

प्रभु श्रीरामजी आदेश नहीं देते कि 'मेरा आदेश है।' नहीं, वरन् इच्छा व्यक्त करते हैं कि मेरी इच्छा है। आप भी अगर नेता हैं, आगेवान हैं, संचालक या नियंत्रक हैं तो अपने से जो छोटे हैं उनको प्रेम और प्रोत्साहन देकर आदेश दोगे तो काम अच्छा होगा और यदि कठोरता से, उत्साह भंग करके हिटलर की तरह आदेश दोगे तो कार्य में बरकत नहीं आयेगी।

श्रीरामजी के कहने पर हनुमानजी वानर-भोज की व्यवस्था में लग गये। नियत दिन नियत समय पर वानरों की टुकड़ी आ गयी। हनुमानजी ने वानरों से कहा : 'मेरी पद्धति से पत्तलों पर भोजन करना है, सबको पंक्ति में बैठना पड़ेगा।'

एक बंदर इधर कूदे तो दूसरा उधर... उन्हें पंक्ति में बिठाते-बिठाते हनुमानजी सिर खुजलाने लगे कि 'हे प्रभु ! इनको पंक्ति में कैसे बिठाया जाय ? इनको तो गोलाकार बैठने की आदत है।'

आखिर हनुमानजी ने जमीन पर पैर से एक लकीर खींची और कहा : 'सब इस लकीर के किनारे-किनारे बैठ जाओ ।'

सारे बंदर पंक्ति में बैठ गये । सबसे पहले उन्हें पत्तलें दी गयीं । कुछ बंदर पत्तलों को हाथ में लेकर इधर-उधर देखने लगे तो कुछ सिर पर रखने लगे। हनुमानजी ने कहा : 'कोई सिर पर पत्तल नहीं रखेगा।'

बंदरों ने पत्तलें नीचे रख दीं । हनुमानजी बंदरों को निर्देश देते जा रहे थे, अतः वे सभी सावधान थे।

भोजन परोसा जाने लगा । ज्यों ही पहला पकवान परोसा गया, सभी बंदर उसे खाने को उद्यत हुए । हनुमानजी ने कहा : 'नहीं, नहीं । अभी नहीं । सब परोसने दो, बाद में भोजन आरंभ करना । खबरदार !'

परोसते-परोसते कंद-मूल परोसने की बारी आयी । आखिर में पके आम परोसे गये । बंदरों को आम बहुत पसंद होते हैं । किंतु हनुमानजी का कड़क अनुशासन था, फिर कैसे खायें ? फिर भी एक बंदर ने चुपके से पैरों से आम उठाया और दबाकर मुँह में डालने का प्रयास किया तो उसकी गुठली उछलकर सामनेवाले बंदर की नाक पर जोर से जा लगी । सब बंदर हुप-हुप करने लगे और आम उठाकर पेड़ों पर जा चढ़े । सारा भोजन वहीं धरा रह गया...

श्रीरामचन्द्रजी मंद-मंद मुसकराये । हनुमानजी ने कहा : ''प्रभु ! मैं तो पहले ही कहता था कि वानर-भोज रहने दें ।''

श्रीरामजी ने कहा : ''नहीं हनुमान ! जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा है अच्छा ही हो रहा है, जो होगा अच्छा ही होगा । संकोच छोड़ो । हनुमान ! तुम्हारे जाति-भाइयों के इस प्रसंग को याद करके लोग प्रसन्न होंगे, अपना खून बढ़ायेंगे।'' यह सुनकर हनुमानजी आनंदित हुए । इसे पढ़कर हम-तुम भी आनंदित हो रहे हैं । यही तो सच्चिदानंद की रीत है ।

श्रीराम-राज्याभिषेक के वर्णन में आता है कि उस समय सभीको परमानंद हुआ था । जीव का वास्तविक स्वभाव सच्चिदानंद, परमानंद है । श्रीरामजी की राज्य-व्यवस्था से, उनके व्यवहार से और अभी अंतर्यामी श्रीरामचन्द्रजी से एकाकार होकर जीनेवाले महापुरुषों के व्यवहार से अपने सच्चिदानंद के व्यवहार की झलकें मिलती हैं । ॐ आनंद...

प्राचीन भारत का विज्ञान

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जो तरक्की प्राचीन भारतीयों ने की थी उसके आगे आज के विज्ञान की तरक्की क्या मायना रखती है ?

महाभारत-युद्ध की एक घटना है : धृष्टद्युम्न ने जब द्रोणाचार्य को मार दिया तब द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा बौखला उठा और उसने पांडवों पर नारायणास्त्र छोड़ दिया । नारायणास्त्र बड़ी तेजी से पांडव-सेना का विनाश करने लगा । श्रीकृष्ण पहचान गये कि यह नारायणास्त्र है । यह तो प्रलय कर देगा । इसके सामने यह सेना तो क्या, १० करोड़ या ५० करोड़ सैनिक भी आ जायें तब भी कुछ नहीं । अर्जुन का गांडीव भी इसके आगे कुछ नहीं कर सकता ।

श्रीकृष्ण ने पांडव-सेना के सारे हथियार फिंकवा दिये और कहा : 'शरणागत हो जाओ । नारायणास्त्र से प्रार्थना करो कि हे नारायणास्त्र ! हम आपको प्रणाम करते हैं । हम आपकी शरण में हैं । हमारे अपराध क्षमा करो । हमारी रक्षा करो ।'

पांडव-सेना के सभी लोगों ने ऐसा ही किया और नारायणास्त्र अश्वत्थामा के पास वापस चला गया । दुर्योधन ने अश्वत्थामा से उसके वापस लौटने का कारण पूछा तो उसने कहा : ''श्रीकृष्ण ने पांडवों को बचने की युक्ति बता दी, इसलिए नारायणास्त्र लौट आया और वे बच गये ।''

दुर्योधन : ''अब इसे दुबारा छोड़ें ।''

अश्वत्थामा : ''अब दुबारा नहीं छोड़ सकते क्योंकि पांडव शरणागत हो गये हैं । अब यदि मैं इसे पुनः छोड़ूँगा तो यह हमारा ही नाश कर डालेगा ।''

क्या विज्ञान ऐसा अस्त्र-शस्त्र या अणु बम बना सका है ? यदि कोई विज्ञान के द्वारा बनाना भी चाहे तो क्या बना सकेगा ? नहीं।

नारायणास्त्र तो ध्यान, योग और तप करके भगवान आदिनारायण से लिया गया था । जैसे भगवान नारायण के पास नारायणास्त्र है, ऐसे ही शिवजी के पास पशुपतास्त्र है, ब्रह्माजी के पास ब्रह्मास्त्र है। ये अस्त्र कभी विफल नहीं होते।

कोई कहे कि 'चलो, वे तो भगवान हैं। उनके पास तो ऐसे दिव्य अस्त्र एवं शक्तियाँ हो सकती हैं। किंतु ऐसा नहीं है। दैत्यों के पास भी अलौकिक शक्तियाँ होती थीं। रावण एक तीर में से अनेक तीरों की बरसात करता, एक में से अनेक हो जाता... कैसा शस्त्र-विज्ञान था भारत का !

भारत की अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) भी गजब की थी !

राजा शाल्व के पास इतना बड़ा विमान था कि उसकी पूरी राजधानी उस विमान में बसी हुई थी । नगरजन, फौज, न्यायालय, बंदीगृह, अस्पताल आदि सब विमान में ही थे। वह विमान पर्वत, समुद्र, धरती, सब जगह पर रह सकता था। राजा शाल्व गर्मी में पर्वतों पर, ठंडी में समुद्र पर और बाकी दिनों में धरती पर अपना नगर ले जाता था।

एक बार उसने द्वारिका के आगे अपना विमान ला खड़ा किया और भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध शुरू कर दिया। श्रीकृष्ण समझ गये कि यह तो लड़ते-लड़ते अपना विमान ही ले उड़ेगा । अतः पहले विमान के उड़ने की शक्ति को ही नष्ट करना पड़ेगा। तभी यह परास्त हो सकेगा। ऐसा ही किया गया। तब शाल्व परास्त हुआ।

प्राचीन भारत में हमारे पूर्वजों के पास ऐसी-ऐसी विद्याएँ थीं जिनकी कल्पना तक आज के विज्ञान के लिए संभव नहीं है। वे विद्याएँ प्राप्त होती थीं स्थूल सृष्टि में रहते हुए भी सूक्ष्म सृष्टि से तादात्म्य करने के मंत्र-विज्ञान से। अपने देश की दिव्य संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति के पीछे गरकाब होना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

*

निरामय जीवन की चतुःसूत्री

प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट रचना है मानव। सबको निरोग व स्वस्थ रखना प्रकृति का नैसर्गिक गुण है। स्वस्थ रहना कितना सहज, सरल व स्वाभाविक है, यह आज के माहौल में हम भूल गये हैं। सद्वृत्ति तथा सदाचार के छोटे-छोटे नियमों के पालन से तथा स्वास्थ्य की इस चतुःसूत्री को अपनाने से हम सदैव स्वस्थ व दीर्घायुषी जीवन सहज में ही प्राप्त कर सकते हैं और यदि शरीर कभी किसी व्याधि से पीड़ित हो भी जाय तो उससे सहजता से छुटकारा पा सकते हैं । प्राणायाम, सूर्योपासना, भगवन्नाम-जप तथा ब्रह्मचर्य का पालन - यह निरामय (स्वस्थ) जीवन की गुरुचाबी है।

(१) *प्राणायाम :*

प्राण अर्थात् जीवनशक्ति और आयाम अर्थात् नियमन । प्राणायाम शब्द का अर्थ है श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया का नियमन करना । जिस प्रकार एलोपैथी में बीमारियों का मूल कारण 'जीवाणु' माना गया है, उसी प्रकार प्राण-चिकित्सा में 'निर्बल प्राण' को माना गया है। शरीर में रक्त का संचारण प्राणों के द्वारा ही होता है । प्राण निर्बल हो जाने पर शरीर के अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाने के कारण ठीक से कार्य नहीं कर पाते और रक्तसंचार मंद पड़ जाता है।

प्राणायाम से प्राणबल बढ़ता है । रक्तसंचार सुव्यवस्थित होने लगता है। कोशिकाओं को पर्याप्त ऊर्जा मिलने से शरीर के सभी प्रमुख अंग - हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे, फेफड़े आदि बलवान व कार्यशील

हो जाते हैं। रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ जाती है। रक्त, नाड़ियाँ तथा मन भी शुद्ध हो जाता है।

पद्धति : पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जायें। दोनों नथुनों से पूरा श्वास बाहर निकाल दें। दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नथुने को बंद करके बायें नथुने से सुखपूर्वक दीर्घ श्वास लें। अब यथाशक्ति श्वास को रोके रखें। फिर बायें नथुने को अनामिका उँगली से बंद करके श्वास को दाहिने नथुने से धीरे-धीरे छोड़ें। इस प्रकार श्वास को पूरा बाहर निकाल दें और फिर दोनों नथुनों को बंद करके श्वास को बाहर ही सुखपूर्वक कुछ देर तक रोके रखें। अब दाहिने नथुने से पुनः श्वास लें और थोड़े समय तक रोककर बायें नथुने से धीरे-धीरे छोड़ें। पूरा श्वास बाहर निकल जाने के बाद कुछ समय तक श्वास को बाहर ही रोके रखें। यह एक प्राणायाम पूरा हुआ।

प्राणायाम में श्वास को लेने, अंदर रोकने, छोड़ने और बाहर रोकने के समय का प्रमाण क्रमशः इस प्रकार है - १:४:२:२ अर्थात् यदि ५ सेकंड श्वास लेने में लगायें तो २० सेकंड रोकें, १० सेकंड उसे छोड़ने में लगायें तथा १० सेकंड बाहर रोकें। यह आदर्श अनुपात है। धीरे-धीरे नियमित अभ्यास द्वारा इस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

प्राणायाम की संख्या धीरे-धीरे बढ़ायें। एक बार संख्या बढ़ाने के बाद फिर घटानी नहीं चाहिए। १० प्राणायाम करने के बाद फिर ९ न करें। त्रिकाल संध्या में (सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्याह्न के समय) प्राणायाम करने से विशेष लाभ होता है। सुषुप्त शक्तियों को जगाकर जीवनशक्ति के विकास में प्राणायाम का बड़ा महत्त्व है।

(२) *सूर्योपासना :*

हमारी शारीरिक शक्ति की उत्पत्ति, स्थिति तथा वृद्धि सूर्य पर आधारित है। सूर्य की किरणों का रक्त, श्वास व पाचन-संस्थान पर असरकारक प्रभाव पड़ता है। पशु सूर्यकिरणों में बैठकर अपनी बीमारी जल्दी मिटा लेते हैं, जबकि मनुष्य कृत्रिम दवाओं की गुलामी करके अपना स्वास्थ्य और अधिक बिगाड़ लेता है। यदि वह चाहे तो 'सूर्यकिरण' जैसी प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से शीघ्र ही आरोग्यलाभ कर सकता है।

अर्घ्यदान : सूर्यकिरणों में सात रंग होते हैं जो विभिन्न रोगों के उपचार में सहायक हैं। सूर्य को अर्घ्य देते समय जलधारा को पार करती हुई सूर्यकिरणें हमारे सिर से पैरों तक पूरे शरीर पर पड़ती हैं। इससे हमें स्वतः ही सूर्यकिरणयुक्त जल-चिकित्सा का लाभ मिल जाता है।

सूर्यस्नान : सूर्योदय के समय कम-से-कम वस्त्र पहनकर, सूर्य की किरणें नाभि पर पड़ें इस तरह बैठ जायें। फिर आँखें मूँदकर ऐसा संकल्प करें : 'सूर्य देवता का नीलवर्ण मेरी नाभि में प्रवेश कर रहा है। मेरे शरीर में सूर्य भगवान की तेजोमय शक्ति का संचार हो रहा है। आरोग्यप्रदाता सूर्यनारायण की जीवनपोषक रश्मियों से मेरे रोम-रोम में रोग-प्रतिकारक शक्ति का अतुलित संचार हो रहा है।' इससे सर्व रोगों का जो मूल कारण अग्निमांद्य है, वह दूर होकर रोग समूल नष्ट हो जायेंगे। मौन, उपवास, प्राणायाम, प्रातःकाल १० मिनट तक सूर्य की किरणों में बैठना और भगवन्नाम-जप रोग मिटाने के बेजोड़ साधन हैं।

सूर्यनमस्कार : हमारे ऋषियों ने मंत्र एवं व्यायामसहित सूर्यनमस्कार की एक प्रणाली विकसित की है, जिसमें सूर्योपासना के साथ-साथ आसन की क्रियाएँ भी हो जाती हैं। इसमें कुल १० आसनों का समावेश है। (इसका विस्तृत वर्णन आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'बाल संस्कार' में उपलब्ध है।)

नियमित सूर्यनमस्कार करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट व बलवान बनता है। व्यक्तित्व तेजस्वी, ओजस्वी व प्रभावी होता है। प्रतिदिन सूर्योपासना करनेवाले का जीवन भी भगवान भास्कर के समान उज्ज्वल तथा तमोनाशक बनता है।

(३) *भगवन्नाम-जप :*

भगवन्नाम-जप में सर्व व्याधिविनाशिनी शक्ति है। हरिनाम, रामनाम, ओंकार के उच्चारण से बहुत सारी बीमारियाँ स्वतः ही मिटती हैं। रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। मंत्रजाप जितना श्रद्धा-विश्वासपूर्वक किया जाता है, लाभ उतना ही अधिक होता है। चिन्ता, अनिद्रा, मानसिक

अवसाद (डिप्रेशन), उच्च व निम्न रक्तचाप आदि मानसिक विकारजन्य लक्षणों में मंत्रजाप से शीघ्र ही लाभ दिखायी देता है। मंत्रजाप से मन में सत्त्वगुण की वृद्धि होती है जिससे आहार-विहार, आचार व विचार सात्त्विक होने लगते हैं। रोगों का मूल हेतु प्रज्ञापराध व असात्म्य इन्द्रियार्थ संयोग (इन्द्रियों का विषयों के साथ अतिमिथ्या अथवा हीन योग) दूर होकर मानव-जीवन संयमी, सदाचारी व स्वस्थ होने लगता है। नियमित मंत्रजाप करनेवाले हजारों-हजारों साधकों का यह प्रत्यक्ष अनुभव है।

(४) *ब्रह्मचर्य :*

'वैद्यक शास्त्र' में ब्रह्मचर्य को परम बल कहा गया है। **ब्रह्मचर्यं परं बलम्।** वीर्य शरीर की बहुत मूल्यवान धातु है। इसके रक्षण से शरीर में एक अद्भुत आकर्षण-शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे 'ओज' कहते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से चेहरे पर तेज, वाणी में बल, कार्य में उत्साह व स्फूर्ति आती है। शरीर से वीर्य-व्यय यह कोई क्षणिक सुख के लिए प्रकृति की व्यवस्था नहीं है। केवल संतानोत्पत्ति के लिए इसका वास्तविक उपयोग है। काम एक विकार है जो बल-बुद्धि तथा आरोग्यता का नाश कर देता है। अत्यधिक वीर्यनाश से शरीर अत्यंत कमजोर हो जाता है, जिससे कई जानलेवा बीमारियाँ शरीर पर बड़ी आसानी से आक्रमण कर देती हैं। इसीलिए कहा गया है :

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

'बिन्दुनाश (वीर्यनाश) ही मृत्यु है और वीर्यरक्षण ही जीवन है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'यौवन सुरक्षा' अथवा 'युवाधन सुरक्षा' पाँच बार पढ़ें। आश्रम में उपलब्ध 'हल्दी बूटी' का प्रयोग करें। **'ॐ अर्यमायै नमः'** इस ब्रह्मचर्य-रक्षक मंत्र का जप करें। सत्संग का श्रवण तथा सत्शास्त्रों का अध्ययन करें।

इस चतुःसूत्री को अपनाने से व्याधि से पीड़ित व्यक्तियों के रोगों का विनाश तथा स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की सुरक्षा होती है।

- धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र, अमदावाद।

घर-घर में पहुँचाओ स्वास्थ्य का खजाना

आजकल देश-विदेश में कई जगहों पर मरीज को जरा-सा रोग होने पर भी लम्बी जाँच-पड़ताल और अकारण ऑपरेशन करके व लम्बे बिल बनाकर गुमराह करके लूटा जाता है। जिससे समाज की कमर ही टूट गयी है। वैद्यक क्षेत्र से सम्बन्धित इन लोगों के कमीशन खाने के लोभ के कारण मरीज तन, मन और धन से भी पीड़ित हो रहे हैं। कई मरीज बापूजी के पास रोते-बिलखते आते हैं कि 'लाखों रुपये लुट गये, दुबारा-तिबारा ऑपरेशन करवाया, फिर भी कुछ फायदा नहीं हुआ। स्वास्थ्य सदा के लिए लड़खड़ा गया। बापूजी! अब...'

पूज्य बापूजी ने व्यथित हृदय से समाज की दुर्दशा सुनी और इस पर काबू पाने के लिए आश्रम द्वारा कई चल-चिकित्सालय एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालय खोल दिये। आश्रम द्वारा औषधियों का कहीं निःशुल्क तो कहीं नाममात्र दरों पर वितरण किया जाने लगा।

परंतु इतने से ही संत-हृदय कहाँ मानता है ? स्वास्थ्य का अनुपम अमृत घर-घर तक पहुँचे, इस उद्देश्य से लोकसंत पूज्य बापूजी ने आरोग्य के अनेकों सरल उपाय अपने सत्संग-प्रवचनों में समय-समय पर बताये हैं। जिन्हें आश्रम द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं 'ऋषि प्रसाद' व 'दरवेश दर्शन' तथा समाचार पत्र 'लोक कल्याण सेतु' में समय-समय पर प्रकाशित किया गया है। उनका लाभ लाखों-करोड़ों भारतवासी और विदेश के लोग उठाते रहे हैं।

ऋतुचर्या का पालन तथा ऋतु-अनुकूल फल, सब्जियाँ, सूखे मेवे, खाद्य वस्तुएँ आदि का उपयोग कर स्वास्थ्य की सुरक्षा करने की ये सुन्दर युक्तियाँ संग्रह के रूप में प्रकाशित करने की जन-जन की माँग **'आरोग्यनिधि-२'** के रूप में साकार हो रही है। आप इसका खूब-खूब लाभ उठायें तथा औरों को दिलाने का दैवी कार्य भी करें।

आधुनिकता की चकाचौंध से प्रभावित होकर

अपने स्वास्थ्य और इस अमूल्य रत्न मानव-देह का सत्यानाश मत कीजिये ।

आइये, अपने स्वास्थ्य के रक्षक और वैद्य स्वयं बनिये । अंग्रेजी दवाओं और ऑपरेशनों के चंगुल से अपने को बचाइये और जान लीजिये उन कुंजियों को जिनसे हमारे पूर्वज १०० वर्षों से भी अधिक समय तक स्वस्थ और सबल जीवन जीते थे ।

इस पुस्तक का उद्देश्य आपको रोगमुक्त करना ही नहीं, बल्कि आपको बीमारी हो ही नहीं, ऐसी खान-पान और रहन-सहन की सरल युक्तियाँ भी आप तक पहुँचाना है । अंत में आप-हम यह भी जान लें कि उत्तम स्वास्थ्य पाने के बाद वहीं रुक नहीं जाना है, संतों के बताये मार्ग पर चलकर प्रभु को भी पाना है... अपनी शाश्वत आत्मा-परमात्मा को भी पहचानना है ।

- श्री योग वेदान्त सेवा समिति, अमदावाद आश्रम ।

** जब हम ईश्वर से विमुख होते हैं तब हमें कोई मार्ग नहीं दिखता और घोर दुःख सहना पड़ता है । जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं तब योग्य उपाय, योग्य प्रवृत्ति, योग्य प्रवाह अपने-आप हमारे हृदय में उठने लगते हैं ।*

** जब तक मनुष्य चिन्ताओं से उद्विग्न रहता है, इच्छा एवं वासना का भूत उसे बैठने नहीं देता तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता । जंजीरों से जकड़ी हुई बुद्धि हिलडुल नहीं सकती । चिन्ताएँ, इच्छाएँ और वासनाएँ शांत होने से स्वतंत्र वायुमंडल का आविर्भाव होता है । उसमें बुद्धि को विकसित होने का अवकाश मिलता है । पंचभौतिक बन्धन कट जाते हैं और शुद्ध आत्मा अपने पूर्ण प्रकाश में चमकने लगता है ।*

– आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन रसायन' से

आवेदन-पत्र का प्रारूप

१. सही का निशान (✓) करें : छात्र ☐ छात्रा ☐

२. विद्यार्थी का पूरा नाम : .... **३. पिता का नाम :** ....

४. स्थायी पता : ....

गाँव/शहर : .... **पोस्ट :** .... **तहसील :** ....

जिला : .... **राज्य :** .... **पिन :** ☐☐☐☐☐☐

५. फोन नं. (STD कोड सहित) : .... **६. ई-मेल :** ....

७. सितम्बर २००३ में जिस महाविद्यालय में अभ्यासरत होंगे, उसका :

नामः .... **(शहर/गाँव) :** ....

जिला : .... **राज्य :** .... **पिन :** ☐☐☐☐☐☐

८. कक्षा : .... **वर्ग :** .... (Faculty/Section) : ....

९. १२वीं की वार्षिक परीक्षा में कुल अंक : .... **प्राप्त अंक :** .... **प्रतिशत :** ....

नोट : आवेदन-पत्र के साथ अंक-पत्र की प्रतिलिपि अवश्य भेजें । आवेदन पत्र भरने हेतु पत्रिका का पृष्ठ न फाड़कर अलग-से किसी कागज पर साफ अक्षरों में लिखकर भेजें ।

नोटबुक, रजिस्टर तथा आश्रम की अन्य सामग्री सभीं संत श्री आसारामजी आश्रमों एवं आश्रम की समितियों के स्टॉल पर उपलब्ध हैं । संपर्क हेतु कुछ आश्रमों के फोन नं. :

अमदावाद : ७५०५०१०-११. सूरत : २७७२२०१. दिल्ली : २५०६६३३२. गोरेगाँव, मुंबई : २८७७९०३०-३१. बड़ौदा : २३५६४४४. राजकोट : २७८३३५४. भेटासी : २८४७८७. गोधरा : २४७७७८. हिम्मतनगर : २३२०९९. मेहसाणा : २४९४२२. विसनगर : २२०३६६. वापी : २४५१५४१. इंदौर : २४७८०३१. भोपाल : २७४२५००. ग्वालियर : २३३५८८८. रतलाम : २६९२६३. छिंदवाड़ा : २४७५७७. उज्जैन : २५५५५५२. रायपुर : २४४३५३४. मुंबई : २८७९०५८२. नागपुर : २६६७२६७. नासिक : २३४५४४०. पूना : ६०५००४३. प्रकाशा : २४०२७५. उल्हासनगर : २५४२६९६. औरंगाबाद : २४००९९९. धुलिया : २०२०००. कोटा : २४९०७५०. अजमेर : २७७२१३९. जयपुर : ५१०५०९९. जोधपुर : २७४२५००. उदयपुर : २६५५६१२. लखनऊ : २५०७११०. बनारस : २२१३७८१. आगरा : २६४१७७०. गाजियाबाद : २८७०८७०. मुजफ्फरनगर : २४४२७३५. अमृतसर : (०१८५८)२६२००१. लुधियाना : २८४५४७३. चंडीगढ़ : ५४०२४०. अम्बाला : २६७९६५८. बहादुरगढ : २६०४५६. फरीदाबाद : २४८०६०८. हिसार : २७५१२१. रोहतक : २२०३५३. पानीपत : (०१८०)२६६०२०२. रेवाड़ी : २६९७१६.

बापूजी ! बेड़ा पार कर देना...

मेरी धर्मपत्नी हेमा गौड़ के गर्भवती होने पर जब उसे डॉक्टर को दिखाया तो डॉक्टर ने कहा : 'केस जटिल है। प्रसूति ऑपरेशन से ही होगी।' दो-तीन अन्य डॉक्टरों का भी यही जवाब रहा।

हम दोनों ने पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा ली हुई है। मैंने पूनम-दर्शन का व्रत भी लिया हुआ है। पूनम पर मैं रतलाम गया और मन-ही-मन गुरुदेव से प्रार्थना की : 'बापूजी ! बेड़ा पार कर देना।'

प्रसूति का समय निकट आने पर जब मैं पत्नी को डॉक्टर के पास ले गया तो उन्होंने कहा : 'अस्पताल में भर्ती होकर ऑपरेशन करा लें ताकि माँ और बालक सही-सलामत रहें।'

किंतु मैं पत्नी को लेकर नहीं गया और सब बापूजी पर ही छोड़ दिया। ठीक १५ दिन बाद जब पत्नी को प्रसव-पीड़ा शुरू हुई तो उसे देशी गाय के गोबर का रस पिलाया और मैं लगातार 'श्री आसारामायण' का पाठ करता रहा। पत्नी भी पूज्य बापूजी का स्मरण करती रही। पूज्य गुरुदेव की कृपा से ३१ अक्टूबर, २००० को मेरी पत्नी ने सामान्य प्रसूति से एक स्वस्थ बालक को जन्म दिया। इस घटना से डॉक्टर भी आश्चर्यचकित हो गये।

सच्चे हृदय की प्रार्थना अवश्य पूर्ण होती है। अनहोनी को होनी कर देने का सामर्थ्य सच्चे हृदय की प्रार्थना में है।

पूज्य बापूजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम !

- मानवदीप गौड़
कासिमपुर, अलीगढ़।

देवास (म.प्र.), २५ व २६ फरवरी : पूज्यश्री के पावन करकमलों से देवास के रमणीय आश्रम का उद्घाटन हुआ। उल्लेखनीय है कि देवास समिति वर्षों से पूज्यश्री के आगमन की प्रतीक्षा में थी। पूज्यश्री उज्जैन पहुँचने से पूर्व एक रात्रि यहाँ ठहरे, फिर २६ फरवरी की सुबह आश्रम-प्रांगण में भक्तों को दर्शन-सत्संग देकर उज्जैन के लिए रवाना हुए।

उज्जैन (म.प्र.), २७ फरवरी से २ मार्च : महाशिवरात्रि पर्व के निमित्त आयोजित 'ध्यान योग शक्तिपात साधना शिविर' की पूर्वसंध्या पर अर्थात् २६ फरवरी को यहाँ भव्य संकीर्तन यात्रा निकाली गयी, जिसमें वातावरण को संगीतमय बनाते बैंड-बाजों और सुसज्जित रथों के साथ बड़ी संख्या में भक्तगण शामिल हुए।

विशाल संख्या में उपस्थित साधकों के कारण मंगलनाथ रोड पर स्थित आश्रम क्षेत्र में ४ दिनों तक लघु सिंहस्थ (कुंभ) का नजारा लग रहा था। भक्तों की अपार भीड़ को देखते प्रशासनिक अधिकारियों में यह एक चर्चा का विषय रहा कि 'उज्जैन में बापूजी के आगमन से इतना जनमानस उमड़ पड़ा है तो सिंहस्थ में इनके जाने से वहाँ की रौनक कितनी अवर्णनीय होगी।' मानों, सबको ये आत्मारामी संत अपने ही लग रहे थे। अधिकारियों की यह चर्चा यही लक्षित करती है मानों, वे सिंहस्थ में पूज्यश्री के आगमन की बाट जोह रहे हों।' चाहे अंकपात से मंगलनाथ हो या महाकाल मंदिर, चाहे बस स्टैण्ड हो या रेलवे स्टेशन, सभी ओर से भक्तों, सत्संग-प्रेमियों का काफिला शिविर-स्थल की ओर जाते देखा जा सकता था। पूज्य बापूजी के आगमन से सारा क्षेत्र 'हरि ॐ'मय हो गया।

वर्ष में आनेवाली चार महारात्रियों में से एक है महाशिवरात्रि। इसके व्रत की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए योगनिष्ठ बापूजी ने कहा : **''इस महाशिवरात्रि का व्रत सबको रखना चाहिए। यदि इस दिन दया, क्षमा,**

ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन किया जाय तो महाशिवरात्रि व्रत में चार चाँद लग जाते हैं । आप पवित्रता, सच्चाई, प्रभु-विश्वास और भलाई से अपने हृदय को भरते चलो, सफलता एवं उन्नति अपने-आप आपके चरण चूमेंगी ।''

बापूजी का रसमय, आनंदमय एवं ज्ञानमय जीवन सबको प्रत्यक्ष प्रमाणित दिख रहा था । पूज्य बापूजी के सत्संग की यह महती विशेषता है कि उनके उपदेश आचरणयुक्त होते हैं और सभी लोग उनके उपदेशानुसार आचरण करके इहलोक में तो प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव करते ही हैं, साथ ही अपना परलोक भी सँवार लेते हैं ।

वल्लभ विद्यानगर (गुज.), ११ से १४ मार्च : भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने, राष्ट्र के युवाधन को रचनात्मक कार्यों में लगाने तथा उनमें सुसंस्कारों का सिंचन करने के महान उद्देश्य को लेकर चार दिवसीय 'युवावर्ग व विद्यार्थी उत्थान शिविर' का आयोजन हुआ ।

विद्यानगरी 'वल्लभ विद्यानगर' में इस आयोजन के लिए स्थानीय समिति वर्षों से प्रार्थना कर रही थी ।

देश के भावी कर्णधारों में हो रहे सुसंस्कार- सिंचन को देखकर 'चारुतर विद्यामंडल' के अध्यक्ष श्री सी.एल. पटेल कह उठे कि 'विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षाओं से भी मैं इस आयोजन को ज्यादा महत्त्व देता हूँ । हमारा सौभाग्य है कि अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर पूज्य बापूजी ने विद्यार्थी शिविर दिया और इसके लिए वल्लभ विद्यानगर को चुना । इस कृपा के लिए हम संतश्री के हृदयपूर्वक आभारी हैं ।'

शास्त्री मैदान में तैयार किये गये विशाल मंडप के आस-पास विद्यार्थियों के लिए 'युवाधन सुरक्षा', 'व्यसनमुक्ति' व 'बाल संस्कार' पर आधारित विविध प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया । जिसकी छात्र-छात्राओं, शिक्षक बंधुओं तथा अभिभावकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की । सूरत आश्रम द्वारा संचालित 'साईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र' द्वारा आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर व प्राकृतिक चिकित्सा शिविर लगाये गये । जिनमें सेवाभावी चिकित्सकों ने अपनी निःशुल्क सेवाएँ दीं ।

सूरत (गुज.), १५ से १८ मार्च : ऐसा स्थान कौन-सा है, जहाँ लाखों की संख्या में लोग भारतीय संस्कृति के प्रतीक होलिकोत्सव मनाने के लिए एकत्रित होते हैं ? जिन्होंने सूरत आश्रम में यह उत्सव पहले कभी देखा है या जो इससे लाभान्वित हुए हैं, ऐसे लाखों लोग कहेंगे : 'संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत !' यहाँ के होलिकोत्सव का दृश्य सचमुच अजब और निराला है । सूर्यपुत्री तापी नदी के पावन तट पर स्थित इस आश्रम में आत्मारामी ब्रह्मनिष्ठ बापूजी के पावन सान्निध्य में यदि होलिकोत्सव मनाया जा रहा हो तो फिर कहना ही क्या ! पूज्य बापूजी के करकमलों से यहाँ लाखों भक्तों ने पलाश के पुष्पों (केसुड़ों) से निर्मित, गंगा-जलमिश्रित प्राकृतिक रंग से होली का भरपूर आनंद लिया ।

अपने हृदयेश्वर के साथ होली खेलते, मस्ती में झूमते-नाचते-गाते भक्तों के इस परम सुन्दर, परम पावन, हृदय को आह्लादित, आनंदित कर देनेवाले दृश्य को देखकर शायद देवता भी सोचते होंगे कि 'काश ! हमें भी भारतभूमि पर जन्म मिल जाय और ऐसे ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के हाथ से हम पर भी रंगों की बौछार हो, जिसमें हमारी स्वर्गीय भोगलिप्सा धुल जाय और ब्रह्मज्ञान का रंग लग जाय । भोग का रंग भगवद्भक्ति के रंग में बदल जाय ।'

इन दिनों में इन प्राकृतिक रंगों के शरीर पर पड़ने से शरीर की गर्मी व पित्त-प्रकोप का शमन होता है और मानसिक संतुलन बना रहता है ।

इस बार पूर्णाहुति के दिन प्रत्येक शिविरार्थी को केसुड़े के फूलों का पाउच (पैकेट) निःशुल्क दिया गया ताकि वे इसे घर ले जाकर अपने सभी सगे-सम्बन्धियों और इष्ट-मित्रों को पलाश के पुष्पों के रंगोत्सव से लाभान्वित करें ।

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) बापूनगर (अमदावाद, गुज.) : गीता भागवत सत्संग, ५ से ७ अप्रैल २००३, लालबहादुर शास्त्री स्टेडियम । फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.

(२) सांताक्रुज (पूर्व), मुंबई : गीता भागवत सत्संग, १० से १३ अप्रैल २००३, पुलिस ग्राउण्ड (कालीना), हंस भुग्रा रोड । (विद्यार्थियों के लिए विशेष : १२ अप्रैल, प्रथम सत्र) फोन : ३२५१९३१२, २६१०८८२१, ९८६९११०८४२.

(३) इन्दौर : विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर, १४ व १५ अप्रैल तथा ध्यान योग साधना शिविर, १६ व १७ अप्रैल २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, खंडवा रोड, बिलावली तालाब के पास । फोन : (०७३१) २४७८०३१, २४६११९८.

पूर्णिमा दर्शन : १६ अप्रैल २००३, इन्दौर में ।

ऐसा रँग डारा बापू ने, भक्त हुए निहाल। सभी रँग गये गुरु-ज्ञान में, ऐसे हुए मालामाल॥ (होलिकोत्सव, सूरत, गुज.)

तेजस्वी विद्यार्थियों के लिए आकर्षक उपहार योजना

इस वर्ष १२वीं की परीक्षा में ८०% या इससे अधिक अंक प्राप्त करनेवाले भारतभर के विद्यार्थियों को ५ नोटबुक प्रसादरूप में दी जायेंगी। इस पत्रिका के पृष्ठ ३० पर मुद्रित आवेदन प्रारूप भेजें।

आवेदन-पत्र जमा करने की अंतिम तिथि : २५ अगस्त २००३.

आवेदन भेजने का पता : 'तेजस्वी विद्यार्थी', श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, बामड़ोली रोड, बहादुरगढ़ (हरियाणा). पिन कोड : १२४५०७. फोन : (०१२७६) २१४१९३, (०११) ३१००५८१५, २५८१७२३८.

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू की जीवन उद्धारक अमृतवाणी से भरपूर

मनीआर्डर/डी.डी. भेजकर रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल से भी प्राप्त कर सकते हैं।

कैसेट विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५.

सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों, श्री योग वेदांत सेवा समितियों और साधक-परिवारों के सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध।

सेवा का दर्पण

पूज्य बापूजी की प्रेरणा एवं निर्देशन में उनके शिष्यों एवं आश्रम की समितियों द्वारा चलायी जा रही समाजोत्थान की विभिन्न प्रवृत्तियाँ : आदिवासी एवं गरीब क्षेत्रों में भण्डारे, प्राकृतिक आपदाग्रस्त क्षेत्रों में राहत शिविरें, व्यसनमुक्ति अभियान, निःशुल्क दंत एवं नेत्र चिकित्सालय, आयुर्वेदिक चल-चिकित्सालय, बाल संस्कार केन्द्र, युवाधन सुरक्षा अभियान, गौसेवा, गरीबों में अनाज वितरण, जेलों में सत्संग...

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTERED. NO. GUJ/1132/2003. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.